प्रकाशक—
विजय सिंह नाहर
४८ इण्डियन मिरर स्ट्रीट,
कलकत्ता

मुद्रक—
उमाकान्त मिश्र
विश्व विनोद प्रेस
४८ इण्डियन मिरर स्ट्रीट
कलकत्ता

एक शब्द

स्वर्गीय पूज्य पिताजी के हृदय में अपने हिन्दी निबन्धों के संग्रह के प्रकाशन की बात बहुत पहले उठी थी; सहृदय जनों के अनुरोध और प्रेरणा से उन्होंने प्रस्तुत 'प्रबन्धावली' के रूप में संग्रह छपाना प्रारम्भ कर भी दिया था। पर ३-४ फार्म ही छपे थे कि वे दाक्षिण भारत की तीर्थ-यात्रा के लिये चले गये और प्रवास से लौटने के कुछ ही दिनों बाद उनका देहान्त हो गया, जिससे 'प्रबन्धावली' का काम एकाएक आगे बढ़ने से रुक गया। कालगति से हाथ में लिया हुआ जो काम वे पूरा नहीं कर सके थे, वह मैं अब पूरा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। न मुझ में पिताजी की विद्वत्ता है, न लगन; अतः 'प्रबन्धावली' में जो कमियाँ रही होंगी, तथा जो देरी हुई है, उसके लिये विद्वज्जनों से मैं विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी हूँ।

'प्रबन्धावली' की उपयोगिता पर सम्मतियाँ भेज कर, आशा है, समीक्षक गण आगे के प्रकाशनों के लिये मेरा उत्साह बढ़ावेंगे।

कलकत्ता,
ता० १५-११-३७

विजयसिंह नाहर

प्राक्कथन

हमारे देश के विभिन्न समाजों और सम्प्रदायों के साहित्य, कला और सभ्यता के विषय में जिन्होंने थोडी बहुत भी आलोचना की है, अथवा सुनी है, वे यह स्वीकार करेंगे कि जैनियों का प्राचीन साहित्य अत्यन्त श्रेष्ठ और विशाल है। यद्यपि इस साहित्य का अधिकाश भाग प्राकृत और मागधी भाषा मे लिखा गया था; किन्तु मनीषी व्यक्ति जानते हैं कि संस्कृत मे भी इस समाज द्वारा रचा हुआ साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। तदतिरिक्त राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी और तामिल इत्यादि भाषाओं मे भी जो जैन-साहित्य मिलता है, वह अत्यन्त उच्च श्रेणी का है। प्राकृत के लिये सुप्रसिद्ध विद्वान् जैकोबी ने एक बार कहा था कि यदि जैन-साहित्य निकाल लें तो प्राकृत मे कुछ नहीं बचेगा। और यही बात हाल ही में गुजराती और राजस्थानी के बारे मे कही गई है। बारहवें गुजराती साहित्य-सम्मेलन मे इतिहास-पुरातत्व परिषद् के अध्यक्ष पद से श्री मुनि जिनविजयजी ने कहा था—"इस तरह के सैंकड़ों जैन पण्डित हुए है जिन्होंने प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश और गुजराती भाषा मे हजारों ग्रन्थ लिखे हैं।" दक्षिण की कनाडी, तामिल आदि भाषाओं के अनेक ग्रन्थ भी जैनियों के ही सिद्ध हुए है। ऐसा कहा जाता है कि तामिल का 'कुरल' नाम का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भी जैनाचार्य की ही रचना है। विषय की कसौटी से देखें, तो भी एक सम्प्रदाय विशेष का साहित्य

होते हुए भी इसमे मनोभावों का विश्वजनीन आवेदन अनुप्राणित है। हमारे लिये यह अत्यन्त गौरव का विषय है कि पूर्व जैनाचार्यों ने साहित्य और सभ्यता की एकदेशीयता, एक भारतीयता को बिल्कुल भुला नहीं दिया था। धार्मिक-साहित्य की रचना के साथ-साथ अनेक आचार्यों ने देववाणी संस्कृत मे नाटक, काव्य, आख्यायिका, चम्पू इत्यादि की रचनाएँ की थीं, जिनमे से अधिकांश ग्रंथ इसलिये अज्ञात रह गए मालूम होते है कि उस समय जैनेतर विद्वानों मे धार्मिक अनुदारता की मात्रा अधिक होने के कारण उन्होंने उन ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया। किन्तु अब ज्यों-ज्यों इस देश मे ऐतिहासिक अनुसन्धान और पुरातत्व का अध्ययन विशाल होता जा रहा है, जैनियों का गुरुतर साहित्य प्रकाश में आता जा रहा है और अनेक संस्थाएँ उसको प्रकाश मे लाने का सुकार्य कर रही हैं। कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र के नाम से आज कोई भी देशी-विदेशी विद्वान् अनभिज्ञ नहीं है। भाषा-शास्त्र और साहित्य का प्रत्येक मर्मज्ञ इस बात को मानता है कि हेमचन्द्राचार्य के समान धुरन्धर और अगाध विद्वान् संसार मे बहुत कम हुए हैं। इस हीनावस्था मे भी संसार के विद्वान भारतीय साहित्य, दर्शन और कला का जो लोहा मानते हैं, उसका मुख्य कारण भारतीय वाङ्मय की अलौकिक उन्नति और विस्तृति ही है। भारतीय कला और साहित्य की इस भव्य उन्नति और विस्तृति के मूल में भारत के सभी समाजों और धर्मो के साहित्य का समन्वय है। हिन्दुओं का वैदिक और पौराणिक साहित्य, बौद्ध-साहित्य और जैन-साहित्य सबके योग से ही भारतीय वाङ्मय की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। जैन-साहित्य का अतुल भण्डार अभी भी अधकार मे पड़ा है, जिसके प्रकाशित होने से भारत का सिर ऊँचा होगा। भाषातत्व के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने जैन-साहित्य की महत्ता के लिये लिखा है—

"The Jain literature of western India, Gujrat,

Rajputana and Malwa during the medieval and early modern periods forms quite a distinctive thing in the expression of Indian culture and by its extent and variety presents a veritable *embarres de richesse.*"

दुर्भाग्य से आज जैन समाज की ऐसी हालत है कि २५०० शताब्दियों मे जो विपुल साहित्य रचा गया, वह केवल भण्डारों और वस्त्रों मे बन्द है। जैन-समाज व्यापार मे प्रवेश करके इतना व्यापारी हो गया कि वह साहित्य और कला की महत्ता को बिल्कुल भूल गया और धार्मिक ज्ञानशीलता के अभाव मे साहित्य की सृष्टि रुक गई, सच्चे विद्वानों और कलावानों का आदर इस समय मे घट गया, जिसके कारण समाज की अग्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। नये साहित्य की सृष्टि की बात तो दूर, आज तो समाज मे इस बात की भी दरकार नहीं समझी जाती कि हमारा प्राचीन साहित्य अधिकाधिक प्रकाश मे आवे, हम उससे फायदा उठावें और संसार भी उसकी महत्ता, गुरुता और प्रामाणिकता समझ सके। हमारे देश का यह दुर्भाग्य ही है कि अपने घर की ज्योति उस समय तक छिपी रहती है, जब तक विदेशी विद्वान् आकर हमको वह बतलावें नहीं। हमारे साहित्य की महत्ता समझाने के लिये टाड, फार्बस, वाटसन, हार्नल, जैकोवी और विन्टर नित्स आते हैं और उनके द्वारा हमारे धर्म-साहित्य के जो प्रामाणिक और सुसम्पादित प्रकाशन होते हैं, उनको देख कर हमे दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। आज हमारे कितने ऐसे वीर हैं जिन्होंने अपने साहित्य और दर्शन के लिये जीवन उत्सर्ग किया हो, कितने ऐसे हैं जिन्होंने उत्सर्ग करनेवालो का सम्मान किया है या कर सकते हैं? क्या हम एक भी वाटसन एक भी जैकोवी या एक भी हार्नल नहीं पैदा कर सकते—नहीं तैयार कर सकते. पर यहाँ साहित्य का महत्व ही क्या है? महात्मा गान्धी ने एक बार जैन-साहित्य की अवस्था के विषय मे कहा था—'गुजरात मे जैन-धर्म की

पुस्तकों के बहुत भण्डार हैं, किन्तु वे बनियों के घर में हैं। उन्होंने उन पुस्तकों को सुन्दर रेशमी वस्त्रों में लपेट कर रखा है। पुस्तकों की ऐसी दशा देख कर मेरा हृदय रोने लगता है, पर जो रोने लगूं तो ६३ वर्ष तक जीता कैसे? किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि यदि चोरी कोई गुनाह नहीं समझा जाता हो तो मैं उन पुस्तकों को चुरा लूं और फिर उनसे कहूँ कि ये पुस्तकें तुम्हारे योग्य नहीं होने से मैंने उनको चुरा लिया। वणिकों के पास ये ग्रन्थ शोभा नहीं देते, वणिक् तो पैसा एकत्रित करना जानते है, और इसीलिये आज जैन-धर्म और जैन-साहित्य अस्तित्व रखते हुये भी निर्जीव पड़े हैं।" जैन-साहित्य के अन्वेषण, शोधन और प्रकाशन की इस समय ससार को अत्यन्त आवश्यकता है। जिसकी कल्पना समाज के भविष्य तक पहुँच सकती है, जो आज की जड़ता को महसूस करता है, वह अवश्य पुकार-पुकार कर इस बात को कहेगा कि यदि जैन-समाज सचमुच अपने जीवन की सुखद कल्पना करता है, यदि वह अतुल साहित्य की श्री में ससार का आदर भाजन होना चाहता है, यदि वह अपनी भावी सतति के हृदयों मे समुन्नत्त आदर्शों की रचना करना चाहता है, तो उसे अपने गौरवपूर्ण साहित्य की रक्षा, वृत्ति और शोध के लिये कर्म-शील हो जाना चाहिये। ज्ञान और साहित्य की साधना के अभाव मे धर्म की ज्योति अनन्त काल तक नहीं रह सकती। यदि उसको अनन्त काल तक अक्षुण्ण रखना है तो साहित्य के संरक्षण और उद्धार का कार्य आवश्यक है। आधुनिक जैन समाज ने जो भी साहित्यिक सुपुत्र पैदा किये, उनसे न केवल समाज और धर्म का मुखोज्ज्वल हुआ, परन्तु समस्त देश की साहित्यिक प्रगति को जीवन और बल मिला। श्रद्धेय प० सुखलालजी जैसे विद्वानों ने भारतीय साहित्य और विचार को प्रोत्साहन दिया। जैन समाज के इन्हीं विरले लालों मे स्वर्गीय पूर्णचन्द्रजी नाहर थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ स्वर्गीय नाहरजी के कतिपय साहित्यिक प्रबन्धों का संकलन है, जिनको उन के सुयोग्य पुत्र और मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र श्री विजयसिंहजी नाहर ने प्रकाशित किया है। मुझे स्वर्गीय पूर्णचन्द्रजी के दर्शन का ही सौभाग्य मिला था, क्यों कि मैं उनके निकट सम्पर्क मे आता और उनकी कुछ सेवा कर सकता, इससे पहले ही हमारे दुर्भाग्य ने उन्हे हमारे बीच मे से उठा लिया। मुझे नहीं मालूम था कि उस महापुरुष के इन कतिपय निबन्धों के प्राक्कथन रूप मे मुझे कुछ लिखना पड़ेगा। पर मेरे लिये यह कम सौभाग्य का विषय नहीं है कि जिस नररत्न की आजीवन साहित्य-साधना के चरणों पर मैं सादर नत-मस्तक हूँ, आज इस लेखनी द्वारा उनकी अमर वचन-सम्पत्ति की सेवा कर रहा हूँ। आज उन्हीं के विषय मे ये दो पंक्तियाँ लिखने का सौभाग्य मुझ अल्पज्ञ को मिला है। श्रीयुक्त नाहरजी जैन समाज के एक अत्यन्त आदरणीय पुरुप थे जिनका अपना निजी व्यक्तित्व था जैसा कि प्रत्येक साहित्यिक का होता है। सच्चा साहित्य सच्चे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। यह आश्चर्य का ही विषय है कि मुर्शिदाबाद के एक धनी परिवार मे जन्म लेकर भी नाहर जी किस प्रकार साहित्य और पुरातत्व की रुचिर लगन और साधना उत्पन्न कर सके। उनके जीवन की जो सामग्री हमे उपलब्ध होती है उससे हमे तो कोई भी ऐसी बात नहीं मालूम होती कि जिसके आधार पर हमे यह कहने मे हिचकिचाहट हो कि श्री नाहरजी मे साहित्य और पुरातत्व-शोध की प्रतिभा और प्रवृत्ति जन्मजात और संस्कारगत थी। अपनी आमरण साहित्य साधना से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि उनके जीवन का प्रत्येक अंश साहित्य और इतिहास की सेवा के लिये था। उन के संग्रह कार्य्य के लिये मित्रों से सुना जाता है कि एक अखबार के कवर के लिये वे सैकड़ों कठिनाइयों की भी परवाह न कर के बेहद उत्साह के साथ चेष्टारत रहते थे।

इसी संग्रह वृत्ति का परिणाम आज 'गुलाबकुमारी पुस्तकालय' का बहुमूल्य संग्रह हमारे लिये—विशेषकर अध्ययनशील विद्वानों के लिये अद्भुत खजाना पड़ा है।

श्रीयुक्त नाहरजी ने संस्कृत, प्राकृत और अँग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और उनमे उनका ज्ञान उत्कृष्ट था। आपने हिन्दी, अँग्रेजी और बँगला मे अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उनके 'जैन लेख संग्रह' तीन भागों मे हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों से संकलित किये हुये करीव ३००० शिला-लेखों का संग्रह है जिनसे जैन इतिहास और पुरातत्त्व का महान् उद्धार हुआ है। उनका 'Epitome of Jainism' नामक बृहद् ग्रन्थ जैन-साहित्य का एक पठनीय ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त उनका विशाल संग्रहालय भी पुकार पुकार कर उनकी परिश्रम-प्रियता और सच्ची पुरातत्व-प्रियता का प्रकाश करता है। उनके विशाल पाण्डित्य, अद्भुत परिश्रम, अपूर्व शास्त्र-ज्ञान और विस्तृत अध्ययन की प्रशंसा मे हिन्दी-साहित्य के आचार्य श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने आज से ७ वर्ष पूर्व कहा था—

"विज्ञान-विद्या विभवप्रसारमधीत जैनागम शास्त्र सारम् ।
चन्द्रं पुराकृत तमोत्कारं, त्वां पूर्णचन्द्र शिरसा नमामि ॥"

और यही कहा था, महाकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त ने—

'वहुरत्ना वसुदा विदित और धनी भी भूरि ।
दुर्लभ है ग्राहक तदपि पूर्णचन्द्र सम सूरि ॥"

जैन-धर्म का प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व ही श्री नाहरजी का मुख्य लेखन-विपय था। विना प्राचीन इतिहास के हमलोग प्राचीन गौरव और कीर्त्ति नहीं जान सकते और वास्तव मे यह इतना महान् विपय है भी कि उसमे अवगाहन करके कोई भी अन्य विपय की आवश्यकता नहीं रहती। साहित्यिक अथवा सामाजिक विपयों पर वे

लिखते जरूर थे और हमारी दृष्टि में तो वह भी कमाल का ही लिखते थ, पर उनका असली विषय पुरातत्त्व था। यह बात उन्होंने अपने कई निबन्धों मे कही भी है, जैसे—"मैं केवल प्राचीन शिला-लेख आदि की खोज में ही लगा रहता हूँ।" या "पुरातत्त्व विषय-शोध का ही प्रेमी होने के कारण ·· · ·· ·" इस प्रबन्धावली मे अधिकांश महत्त्वपूर्ण लेख प्राचीन खोज-सम्बन्धी ही हैं, किन्तु फिर भी प्रबन्धावली के लेखों से हमको यह मालूम पड़ता है कि आधुनिक साहित्यिक और सामाजिक विषयों मे भी उनकी दिलचस्पी कम नहीं थी। वे सामयिकता का महत्त्व समझते थे। उन्होने लिखा है—"चाहे तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, शिशु चाहे युवक कोई भी क्यों न हो, समय की गति को अबाध्य करने मे समर्थ नहीं। जैनागम के स्थान-स्थान पर 'तेणं कालेण, तेणं समयेण' का उल्लेख मिलता है।" प्राचीन वस्तुओं की शोध और प्रकाशन मे लगे रहते हुए होने पर भी सामाजिक और पारिवारिक जीवन मे वे समय के प्रभाव को पहचानते थे। उन विषयों के विश्लेषण मे भी अपनी लेखनी का उपयोग करते थे। पर्दे, स्त्री-शिक्षा, साहित्यिक रुचि आदि के विषय मे उन्होंने कई वार उद्गार प्रकट किये थे। स्त्री-शिक्षा के विषय मे लिखा है—

"कोई भी जाति की सच्ची उन्नति उसी समय हो सकती है, जब कि उस जाति की महिलाएँ सुशिक्षिता हो और उनके विचार उच्च-कोटि के हों। जब तक ऐसा न होगा, तब तक सच्ची और स्थायी उन्नति सम्भव नहीं है।"

साहित्य की महत्ता के विषय मे उन्होंने लिखा है—"समाज-वृक्ष का साहित्य फल है और साहित्य-रूपी फल मे समाज-रूपी वृक्ष को हरा-भरा रखने की शक्ति विद्यमान है।"

कहने का मतलब यह है कि पुरातत्त्व ही से उनका जी तृप्त नहीं हुआ था, आधुनिक समस्याओं पर भी उनका ध्यान था। यह बात उनके लिये इस देश के डायरेक्टर ऑफ आर्कियालोजी ने भी कही है—

"He held fast in his loyalty to all that was best in the old culture and still not unresponsive to the needs of the new age"

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रबन्धों में भी सभी सुरुचि के पाठकों को सामग्री मिलेगी।

नाहरजी का जन्म उस प्रान्त मे हुआ था जो वस्तुतः हिन्दी भाषा का प्रान्त नहीं समझा जाता; यद्यपि अब यह बात नहीं, क्योंकि हिन्दी के ग्रहण मे अब प्रान्तीय क्षुद्र-भावना को स्थान नहीं रहा है। यह एक स्वर से राष्ट्रीय भाषा स्वीकार की गई है। तथापि भाषा विज्ञान के साधारण नियमों के अनुसार भाषा में किंचित स्वरूप भेद तो संभव है ही। एक पुरातत्वज्ञ के नाते स्वयं नाहरजी का भाषातत्त्व का अच्छा ज्ञान था जिसकी छाया हमे उनके प्रबन्धों मे स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। वे खुद कहते थे—"प्रचलित भाषा पांच पाच, दस दस, या सौ सौ कोसों पर कुछ न कुछ बदली हुई प्रतीत होती है।" भाषा के विकास और परिवर्त्तन में भौगोलिक कारण अति प्रधान होता है। नाहरजी की भाषा मे प्रौढ़ता और प्रभविष्णुता की कमी नहीं है यद्यपि कहीं कहीं उसमे बंगाली या मुर्शिदाबादी स्लैंग आजाने के कारण व्याकरण की अशुद्धता रह गई है। किन्तु कहीं कहीं उनके वाक्य भाषा और शैली की दृष्टि से बडे ओजपूर्ण मालूम पड़ते है। जैसे—

"यदि जैन धर्म केवल आचार्यों पर निर्भर न रहता, तो जाति बंधारण की कदापि ऐसी सृष्टि नहीं होती। यदि वीर परमात्मा की वाणी सुनने के लिये केवल उन लोगों के मुख कमल की तरफ ताकना न पडता तो सम्भव है कि जैन जाति के वर्त्तमान बंधारण मे जिस कारण विशेष हानि उपस्थित है, उसे देखने का अवसर नहीं मिलता।"

इन वाक्यों का शब्द-चयन तथा गठन काफी ओजपूर्ण है। ऐसी प्रौढ़

भापा हर कोई नहीं लिख सकता। प्रस्तुत पुस्तक के प्रवन्धों से उनकी निष्पक्षता भी पूर्ण से मालूम होती है। वे किसी भी वात के विरोध में उस समय तक नहीं पड़ते थे, जब तक कि उस विषय की पूरी छानवीन न कर लेते थे। 'कूएँ भांग' शीर्षक उनका प्रबन्ध इस वारे मे पठनीय है। 'धार्मिक उदारता', 'वर्त्तमान समस्या' और 'श्वेताम्बर' 'दिगम्बर सम्प्रदायों की प्राचीनता' आदि प्रबन्ध इस वात के द्योतक है। जैन साहित्य को उत्तम से उत्तम रूप मे प्रकाश मे लाने की उनकी अतृप्त आकांक्षा थी। वे केवल ग्रन्थों का येन केन प्रकारेण प्रकाशन कराना ही अलम् नहीं समझते थे, ग्रन्थों के निर्वाचन, सम्पादन और प्रकाशन के विषय में भी उनकी भव्य कल्पनाएँ थीं। उन्होंने लिखा है—

"कोई ग्रन्थ क्यों न हो, उसका गौरव उसके कर्त्ता के हाथ से निकलने पर जो था, उतना ही नहीं, परन्तु उससे कई गुना अधिक बनाये रखने के लिये हमे आवश्यक है कि हम उन्हे सुपात्र उत्तराधिकारी की तरह अच्छी प्रकार समालोचना और उपयुक्त टीका टिप्पणी के साथ वडी सावधानी के साथ प्रकाशित करे।·· ············यदि पुस्तक शुद्ध ही नहीं हुई, पूरी छानवीन, जाँच पडताल के साथ छापी ही न गई तो दूसरी गौण वातों पर कौन ध्यान देता है ?"

वास्तव मे, ग्रन्थों के सम्पादन और प्रकाशन की यह बुराई अनेक ग्रन्थों मे दिखाई देती है। विदेशों मे जो सस्कृत आदि आर्य भाषाओं के ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं, उनमे शायद ही अशुद्धि रहती है, शायद ही उसमे कोई विषय छूटता है। इसका कारण यह है कि वहाँ के विद्वानों को ग्रन्थों से सच्चा प्रेम होता है। वे उनके प्रणयन या सम्पादन मे अपना जीवन भर भी लगा सकते है, लगा देते है। श्री नाहरजी इसी आदर्श के व्यक्ति थे—यथासाध्य उन्होने इस वात को वरावर ध्यान मे रखा।

अपनी जीवन पर्यन्त की हुई साहित्यिक तपस्या के बल से जैन साहित्य का मस्तक ऊँचा रखनेवाले एवं हममें अपने उदाहरण से आत्म-चेतना पैदा करनेवाले, उस महान् साहित्यिक के निधन से आज हम कितने दीन हो गये हैं; इसका अनुमान सहज ही नहीं लग सकता, पर उन पवित्रात्मा के प्रति जैन समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह अधिकाधिक रूप में उनके द्वारा किये हुये यज्ञ को जारी रखे—प्राचीन ग्रन्थ-रत्नों का शीघ्रता के साथ प्रकाशन किया जावे। यह हमारा एक कर्त्तव्य है. जिसके पालन में हमे क्षणमात्र के लिये भी निश्चेष्ट नहीं रहना चाहिये। जड़ता ही मृत्यु है। आज यह समय आ गया है कि इस धर्म के अहिंसा और अनेकान्त जैसे उच्च सिद्धान्तों की तरफ पीड़ित मानवता को ध्यान देना ही होगा। हिंसा के आतंक से घुटा हुआ मानव, आज अहिंसा की शरण लेना चाहता है। दुनिया की छाती पर हिंसा के फोड़ों मे बहुत मवाद भर गया है—शरीर जर्जरित हो रहा है, अहिंसा का मलहम चाहिये। इसलिये जैन साहित्य का प्रचार अधिकाधिक होने से एक तरफ तो भारतीय साहित्य की श्री-वृद्धि होगी, जनता मे लोक-कल्याण और सुखशान्ति विधायक सिद्धान्तों का सच्चा प्रकाश फैलेगा और दूसरे तरफ धर्म की सच्ची आत्मा जागृत होगी, उसकी भव्य प्रेरणा कार्यान्वित होगी। आज के युग मे हर एक धर्म और सम्प्रदाय का साहित्य प्रकाश मे आना चाहिये जिससे ज्ञान का विकास हो और धार्मिक, सांस्कृतिक समन्वय की स्थापना हो। सच्चा जिज्ञासु आज प्रत्येक मजहब को विश्लेषणात्मक और बौद्धिक कसौटी पर कसना चाहता है।

बौद्धधर्म जैनधर्म से बाद का है और एक दफा भारत में उसका प्रकाश ओझल हो गया था, किन्तु इन १० वर्षों मे बौद्ध साहित्य की तरफ जनता आकृष्ट हो रही है, दिन प्रतिदिन बौद्ध साहित्य के ग्रन्थरत्न प्रकाश

मे आ रहे है। इसका कारण यही है कि उनके प्रचार मे आधुनिकता है। उन्होंने इस धर्म के पुनर्जीवन के लिये ज्ञान और ज्ञानियों की शरण ली है। उसके लिये बौद्ध भिक्षुओं ने मिशन स्पिरिट ग्रहण की है। हमारे वर्त्तमान आचार्य भी यदि इस बात की ओर ध्यान दें तो बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। जैनधर्म के सिद्धान्त सर्व-जन-हितकारी और नैतिक बौद्धिक दृष्टि से वड़े सबल है। अहिंसा से तो आज इस देश की लड़ाई लड़ी जा रही है।

बौद्ध साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिये उस धर्म के अनुयायी तन, मन, धन से चेष्टा कर रहे है। आज अँग्रेजी, जर्मन, जापानी, चीनी, हिन्दी, बंगाली, मराठी और गुजराती आदि सभी भाषाओं मे बौद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। धम्मपद, त्रिपिटिक, मज्झिमनिकाय, सुत्तनिकाय, दीघनिकाय, जातक कथा, आदि सभी प्रमुख ग्रन्थ आज अँग्रेजी, जर्मन और राष्ट्रभाषा हिन्दी मे विद्यमान है। यह युग ही धर्म-मन्थन का है। प्रत्येक धर्म में क्रान्त-जीवन का उदय हो रहा है—यदि नहीं हुआ है तो होना चाहिये।

जैन-साहित्य का, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, बड़ा विशाल भविष्य है, यदि हममे उस तरफ कार्य करने की लगन हो। आज कितने शर्म की बात है कि धर्म-प्रवर्त्तक श्री महावीर का कोई प्रामाणिक, बौद्धिक कसौटी पर खरा उतरनेवाला निरपेक्ष भाव से लिखा हुआ जीवन-चरित्र नहीं है। श्रद्धेय पण्डित सुखलालजी जैसे महान् प्रतिभा-सम्पन्न और गहन अध्ययनवाले विद्वान् को शीघ्र इस विषय को लेना चाहिये। यदि उन्होंने यह कार्य किया तो अवश्य जैन साहित्य का, भारतीय-समाज और मानव जाति का महान् उपकार होगा। मैं धार्मिक विच्छेद या आतंक की बात नहीं कहता। मैं धार्मिक स्वतन्त्रता का कायल हूँ, किन्तु मेरा मतलब यह है कि प्रत्येक धर्म एक सुदीर्घ अनन्त सत्य की ज्योति से प्रोद्भासित हुआ था, वह ज्योति सब मे किसी न किसी आवरण मे प्रज्वलित है।

उसे जनता के दर्शन, आत्मा के प्रकाश, तिमिर-विनाश के लिये सामने लाना चाहिये। आज की अवस्था तो हमारे लिये लज्जा और दुःख की अवस्था ही है। प्रत्येक साक्षर का कर्त्तव्य है कि वह जैन-साहित्य में रुचि पैदा करे, प्रत्येक विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह जैन-साहित्य की सेवा का प्रण करे। आज यह आवश्यकता है कि जैन-ग्रन्थों को आधुनिक भाषाओं में आधुनिक प्रणाली से सम्पादन करके, भूमिकाओं और टिप्पणियों के साथ उपयोगी बना कर प्रकाशित किया जाय। यूनिवर्सिटियों मे पाश्चात्य साहित्य-प्रणालियों का अध्ययन करनेवालों ग्रेजुएटों को जैन साहित्य की—घर के हीरों की भी खबर लेनी चाहिये। जैन-धर्म और जैन-साहित्य से भारतीय-साहित्य और भारतीय-दर्शन की एक नयी ज्योति उद्भासित हो सकेगी। जहाँ हिंसा और दमन का आतंक है, वहाँ अहिंसा और शान्ति की बूँदे बरस सकेंगी।

स्वर्गीय नाहरजी की अन्तरात्मा इसी ज्योति की प्रभा के प्रसार के लिये लालायित थी—उसीके लिये उनकी कार्य-शक्ति आलोडित थी। आज वे नहीं हैं, तो क्या उनकी प्रेरणा भी जीवित नही है? जैसे उनकी कीर्त्ति अमर है, साधना अक्षुण्ण है, उसी तरह उनके जीवन की आदर्शात्मक प्रेरणा जीवित है। और हमे उसको ग्रहण करना चाहिये। आशा है, जैन-धर्म के हितैषी और ज्ञान-विकास के सच्चे हिमायती सत्त्वर गति से इस जिम्मेवारी को कार्य्यान्वित करेंगे।

अन्त में, मैं स्वर्गीय नाहरजी की मृतात्मा, किन्तु सजीव प्रेरणा के लिये श्रद्धा और अर्चना प्रकाश करता हुआ, भाई विजयसिंहजी को ये साहित्यिक-प्रबन्ध प्रकाशित करने और मुझे ये पंक्तियाँ लिखने का दुर्लभ अवसर देने के लिये धन्यवाद देता हूँ।

कलकत्ता
ता० २३-११-३७ — भँवरमल सिंघी

पूरण चन्द नाहर

म १५ मई १८७५ मृत्यु ३१ मई १९३६

परिचय

श्री पूरणचन्दजी नाहरका जन्म सं० १९३२ (१८७५ ई०) की बैशाख शुक्ला दशमीको अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) में हुआ था। आपके पिता रायबहादुर सिताबचन्दजी नाहर ओसवाल समाज के एक धार्मिक, विद्याप्रेमी तथा सुप्रतिष्ठित जमीन्दार थे। नाहरजीने एन्ट्रेन्सकी शिक्षा अपने पितामही के नामपर पिताजी द्वारा स्थापित "बीबी प्राण कुमारी जुबिली हाईस्कूल" मे पायी थी। १८९५ ई० मे आपने प्रेसिडेन्सी कौलेजसे बी० ए० पास किया। आप बंगाल के जैनियोंमें सर्वप्रथम ग्रेजुएट हुए थे। तत्पश्चात् आपने कानून का अध्ययन किया एवं पाली भाषामे कलकत्ता यूनिवर्सीटीसे एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। आपने कुछ दिन बरहमपुर (मुर्शिदाबाद) की जिला अदालतमे वकालत भी की। तत्पश्चात् सन् १९१४ मे कलकत्ता हाईकोर्टमें एडवोकेट हुए।

आप कुछ दिन तक औनरेबल मिस्टर भूपेन्द्रनाथ बसु सोलीसीटर के पास आर्टिकल क्लर्क रहे। इस समयसे आपको साहित्य एवं पुरातत्वसे प्रेम बढ़ता गया एवं आइनजीवीका कार्य छोड़कर आपने अध्ययन एवं प्राचीन वस्तुओं की खोज तथा संग्रहमें ही जीवन व्यतीत करना शुरु किया। आप सार्वजनिक कार्योंमे भी अच्छा भाग लेते थे। बहुत दिनोंतक आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके कोर्टमें श्वेताम्बर जैनियोंकी ओरसे प्रतिनिधि रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें मैट्रिक, इन्टरमीजियट, और बी० ए० परीक्षाओंके कई वर्ष तक आप परीक्षक भी रहे। पी० आर० एस० के बोर्डमें भी आपने परीक्षक का कार्य किया था।

आप इंगलैण्ड के रौयल एसियाटिक सोसाइटी, इंडिया सोसाइटी आदि तथा बंगाल एसियेटिक सोसाइटी, बिहार उड़िसा रिसर्च

सोसाइटी, वंगीय साहित्य परिषद्, भंडारकर ओरियेन्टल इन्सीट्यूट, नागरी प्रचारणी सभा आदि संस्थाओंके सदस्य थे। बहुत दिनोंतक मुर्शिदाबाद के तथा लालबाग कोर्टके औनररी मैजिस्ट्रेट, अजीमगंज म्युनिस्पैलिटीके कमिश्नर तथा मुर्शिदाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सदस्य एवं एडवर्ड कोरोनेशन स्कूलके सेक्रेटरी भी थे। आप आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्टके औनररी कोरेस्पौन्डेन्ट तथा भंडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना; जैन श्वेताम्बर एज्यूकेशन बोर्ड, बम्बई; राममोहन लाइब्रेरी, कलकत्ता तथा जैन साहित्य संशोधक समाज, पूना, के आजीवन सदस्य थे।

बाल्यावस्थासे ही आपको भ्रमणका बहुत शौक था और आपने प्रायः समस्त प्रसिद्ध जैनतीर्थोंकी यात्रा भी की थी। यात्राके साथ-साथ आप पुरानी वस्तुओंका तथा तीर्थोंमे मूर्तियों पर के लेखों आदिका संग्रह करते रहते थे। मृत्युके कुछ दिन पूर्व ही आप दक्षिण भारतके प्रसिद्ध स्थानों तथा शत्रुंजय आदि गुजरात प्रान्तके और राजपूतानाके तीर्थोंकी यात्रा कर लौटे थे।

जैन समाजमें आप एक उच्चकोटिके विद्वान थे। आपका इतिहास पुरातत्व सम्बन्धी शौक बहुत बढ़ा चढ़ा था। प्राचीन जैन इतिहासकी खोजमें आपने बहुत कष्ट सहा और धन भी बहुत खर्च किया। आपने जो 'जैन-लेख-संग्रह' तीन भाग, 'पावापुरी तीर्थका प्राचीन-इतिहास', 'एपिटोम आफ जैनिज्म' तथा 'प्राकृत सूत्र रत्नमाला' आदि ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं वे ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण और नवीन अनुसन्धानोंसे पूर्ण हैं।

'आपकी विद्वता पर ओसवालोंको नाज था तथा आपकी तीर्थ सेवाओंपर श्वेताम्बर जैनियोंको घमंड था।' आपने श्री महावीर स्वामीकी निर्वाण भूमि 'पावापुरी' तीर्थ तथा 'राजगृह' तीर्थके विषयमें समय, शक्ति और अर्थसे अमूल्य सेवा की है। पावापुरी तीर्थ के वर्तमान मन्दिर, जो सम्राट् शाहजहांके राजत्वकालमें सं० १६६८ में बना था,—उस समयकी मन्दिर-प्रशस्ति, जिससे अस्तित्वनका पता न

था, आपने ही मूलवेदीके नीचेसे उद्धार किया और उसी मन्दिरमें लगवा दिया है। इस तीर्थके इलाकेमें कुछ गांव थे जिसकी आमदनी भंडारमें नहीं आती थी, सो आपके अथक परिश्रम और प्रयत्नसे आने लगी है। आपने पावापुरीमें दीन-हीनोंके लिये एक 'दीन शाला' बनवा दी है जो विशेष उपयोगी है। तीर्थ राजगृहके विपुलाचल पर्वत पर जो श्री पार्श्वनाथजीका प्राचीन मन्दिर है, उसकी सं० १६१२ की गद्यपद्यबन्ध प्रशस्ति के विशाल शिलालेखका आपने बड़ी खोजसे पता लगाया था। वह शिलालेख अभी राजगृहमे आपके मकान 'शान्तिभवन' में है। इस तीर्थके लिये श्वेताम्बरियों और दिगम्बरियों के बीच मामला छिड़ा था। उसमें विशेषज्ञोंकी हैसियतसे आपने गवाही दी थी और आपसे महीनोंतक जिरह की गयी थी। इसमे आपके जैन इतिहास और शास्त्रके ज्ञान, आपकी गम्भीर गवेषणा और स्मृति-शक्तिका जो परिचय मिला, वह वास्तवमें अद्भुत था। पश्चात् दोनों सम्प्रदायोंमे समझौता हो गया। उसमे भी आप ही का हाथ था। आपने पटना (पाटलिपुत्र) के मन्दिरके जीर्णोद्धारमें अच्छी रक़म प्रदान की थी। ओसियां (मारवाड़) के मन्दिरमे जो ओसवालोंके लिये तीर्थ रूप है, डूंगरी पर जो चरण थे, उनपर आपने पत्थर की सुन्दर छतरी बनवाई थी।'

तीर्थ-सेवाके साथ साथ आपने बराबर अपनेको समाज-सेवामे भी तत्पर रखा। आप समाज-सेवाकी हृदयसे कामना रखते थे और घोषणा द्वारा अपनेको दिखानेकी आपने कभी चेष्टा नहीं की। शांतिपूर्वक सेवा करना ही आपका ध्येय था। आप समाज सुधारमें पूर्ण विश्वास रखते थे और प्रबल समाज-सुधारक थे। आपने अपने यहां के विवाह प्रभृति सामाजिक कार्योंमे बहुत सुधार किये, जिसके कारण आपसे आपके गांवके लोग विरोधी हो गये थे परन्तु आपने किसीकी कुछ पर्वाह न की और दिन-ब-दिन सुधारके लिये अग्रसर ही होते गये। आप किसीके ऊपर बल देकर सुधार करानेके विरोधी थे।'

'कलकत्ताके ओसवालोंमे जब देशी-विलायतीका युद्ध बड़ी बुरी तरहसे चला था तब उसे भी आपने बड़ी दूरदर्शिता और प्रेमके साथ निपटा कर समाज का बहुत हित किया। श्री अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन पर जब आपको प्रेसिडेन्ट चुना गया तब आपने १०४ डिग्री बुखार होते हुए भी कलकत्तासे अजमेर तक रेलमे सफर किया और समाज-सेवासे मुख न मोड़ा।' इस अवसर पर आपका भाषण बहुत महत्वपूर्ण तथा समयोपयोगी हुआ था।

आपको पुरानी चीजोंकी खोजके साथ साथ उनका संग्रह करनेका भी बहुत शौक था। आपने बहुत अर्थ व्यय कर पुराने सुन्दर भारतीय चित्रों, भारतके विभिन्न स्थानोंकी प्राचीन मूर्तियों, सिक्कों, क्यूरियो, हस्तलिखित पुस्तकों आदिका संग्रह किया और उसे कलकत्तेमें अपने कनिष्ठ भ्राता की स्मृतिमें बने हुए कुमार सिंह हालमें प्रदर्शित कर रखा है। अपनी माताजी के नाम पर आपने ई० सन् १९१२ में श्री गुलाब कुमारी पुस्तकालयकी स्थापना की थी एवं आज वह पुस्तकालय जैन ग्रंथों एवं पुरातत्वकी पुस्तको के लिये कलकत्तेमें ही नहीं बल्कि भारतवर्षमें एक प्रसिद्ध संस्था हो रही है। आप हर तरहका संग्रह करते थे। 'आपमें संग्रहकी प्रवृत्ति एक जन्मजात संस्कार ही था। छोटी छोटी चीजोंका भी वे ऐसा संग्रह करते थे कि जो कलाकी दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण और दर्शनीय हो जाता था। आपके यहां मासिक पत्रोंके मुखपृष्ठका जो संग्रह है वह इस बातका प्रमाण है। इन मुखपृष्ठोंको एकत्रित करनेमें आपने जो परिश्रम और समय व्यय किया उसकी सार्थकता एक साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता, फिर भी इतिहास और कलाप्रेमीके लिए वह संग्रह कम कीमत नहीं रखता। इसी प्रकार विवाहकी कुंकुम पत्रिकाओंका संग्रह भी आपने किया था और इससे यह बतला दिया था कि छोटी-छोटी वस्तुएं भी अपना महत्व रखती हैं।' 'आप प्रत्येक वस्तुको बड़े सुन्दर ढंगसे सजाकर रखते थे। आपका

छपे चित्रोंकी पन्द्रह बीस चित्रावलियों, पुराने टिकटों, कलाकी वस्तुओं, अखबारोंकी कतरन, जैन-सम्बन्धी लेखों तथा समाचारों, सम्राट् की रजत-जयन्ती, राज्याभिषेक तथा शव-जुलूस का संग्रह, बड़ा ही अनुपम हुआ है, जो कि और कही नहीं मिल सकता।'

आप ३१ मई; १९३६ को संध्याके सवा पांच बजे पूर्ण ज्ञानमें समाधीके साथ ४ पुत्र, ५ कन्या तथा पौत्र प्रपौत्र आदि परिवार को छोड़कर देव-लोक पधारे। आपके विषयमें प्रसिद्ध विद्वान श्री ब्रज-मोहनजी बर्माने 'विशाल भारत' में लिखा है:—

'नाहरजी की महान् विद्वत्तासे कही बढ़कर थी उनकी सज्जनता। जो कोई भी उनसे मिलता, वही उनकी सज्जनताकी तारीफ करता था। नाहरजी धनी थे, सुशिक्षित थे, विद्वान थे, लेकिन सबसे बढ़कर वे थे आदमी और आजकल आदमी होना आसान नही है—

"हमने माना है फरिश्ता शेखजी,
'आदमी' होना बहुत दुश्वार है!"

नाहरजीका सरल स्वभाव और उनका सहज प्रेम ऐसा था, जो सभीको आकर्षित कर लेता था। यद्यपि नाहरजी वयोवृद्ध थे, साठ वर्षसे ऊपरके हो चुके थे, फिर भी उनमें युवकोंसे बढ़कर उत्साह और शक्ति थी। वे दिनमे कभी सोते नही थे। उनको सुबहसे शाम तक काम करते देखकर युवक भी लज्जित हो जाते थे। जो कोई भी उनका संग्रह देखने जाता, उसे वे बड़े प्रेम और उत्साहसे दिखलाते थे। अपने अद्भुत संग्रहकी दुर्लभ वस्तुओंको दिखलानेमे चार-चार पांच-पांच घंटे लगाकर भी वे थकते न थे। आगत सज्जनोका आदर-सत्कार करनेके अतिरिक्त उन्हें खिलाने-पिलानेका भी नाहरजी को बड़ा शौक था। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे बुड्ढोंमें बुड्ढे, प्रौढ़ोंमे प्रौढ़, युवकोंमें युवक और बच्चोंमें बच्चे बन जाते थे, इसीलिए बच्चोसे लेकर बूढ़ोतक जो कोई भी उनसे

मिलता था, उसे यही जान पड़ता था कि वह अपने किसी पूर्व परिचित मित्रसे मिल रहा है। गरीब हो या अमीर—यहां तक कि नौकरों तकसे उनका वर्ताव एक-सा होता था। माहरजी अपने टाइपके एक विशेष उदाहरण थे—ऐसे टाइपके, जो आजकल प्रायः दुर्लभ है।'

सूची-पत्र

सामाजिक

विविध

———

प्राचीन जैन हिन्दी साहित्य

जैनियों के साहित्य का भण्डार पूर्ण है। मैं केवल प्राचीन शिलालेख आदि की खोज मे ही लगा रहता हूं। साहित्य के विषय में एक प्रकार से अज्ञ हूं। इस विषय पर लिखने के लिये जैन साहित्य का ज्ञान पूरा पूरा चाहिए। अतएव प्राचीन साहित्य के ज्ञान की अपूर्णता और तत्सामयिक इतिहास के ज्ञान की संकीर्णता के कारण मेरे विचारों मे भ्रम होना संभव है। मैं हिन्दी को और जैन साहित्य को पृथक् पृथक् नहीं समझता हूं। हिन्दी साहित्य में जैन साहित्य का स्थान उच्च है। सब को विदित है कि प्राकृत में ही जैनियो के मूल सूत्र सिद्धान्त रचे हुए हैं। प्राकृत और हिन्दी के सम्बन्ध में, इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्राकृत का रूपान्तर ही हिन्दी है अर्थात् हिन्दी का प्राकृत ही जन्मदाता है। सब विद्वानों को ज्ञात है कि भारत में विदेशी राजाओ के आने से देश की भाषा पर भी पूरा असर पहुचा। फ़ारसी अरबी का प्रभाव बढ़कर उस समय को प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ ही हिन्दी बन गईं। क्रमशः प्राकृत शब्दो का व्यवहार घटते घटते प्राकृत का अस्तित्व लोप होने लगा। पुनः उर्दू के आविर्भाव के साथ हिन्दी की दशा और भी बिगड़ने लगी। उस समय हिन्दी प्रेमी सुधार को चेष्टा करने लगे और लुप्त-प्राय प्राकृत के स्थान में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों का यथायथ हिन्दी में अधिक होना आरम्भ हुआ। प्राचीन जैन साहित्य से हिन्दी का क्रमवार अत्युत्तम इतिहास बन सकता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन पर "जैन हितैषी" के सुयोग्य सम्पादक, सुप्रसिद्ध लेखक और ऐतिहासिक विद्वान् पंडित नाथूरामजी प्रेमी* ने 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' नामक एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। उस निबन्ध से मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है। उन्होने जैन भाषा साहित्य का प्राचीन काल से वर्त्तमान समय तक का इतिहास बड़ी योग्यता से लिखा है। मिश्रबन्धु महोदयों ने जो हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है, उसमें हिन्दी की उत्पत्ति सं० ७०० से मानी है। वे पुष्य नामक हिन्दी के पहले कवि का समय सं० ७०० कहते हैं और लिखते हैं कि इसका न तो कोई ठीक हाल ही विदित है और न इसकी कविता ही हस्तगत होती है। तदनन्तर सं० ८९० के लगभग 'खुमान रासा' के कर्त्ता भाट कवि का होना लिखा है, परन्तु यह ग्रन्थ भी अलभ्य है। वर्त्तमान 'खुमानरासा' बहुत पीछे का है। सं० १००० में गीता के अनुवादकर्त्ता भुवाल कवि का समय लिखकर उनकी कविता का जो उदाहरण प्रकाशित किया है, उस कविता से कवि का सं० १००० होने में सन्देह होता है। कविता की भाषा व्रजभाषा है और उसकी परिपाटी गोस्वामी तुलसीदास जी की कविता की सी प्रतीत होती है। अनुमान से इस कविता की रचना वि० सं० १६०० के लगभग की होनी चाहिए। ग्रन्थ के अन्त में "संवत् कर अब करौं बखाना। सहस्र से संपूरण जाना" है, इससे इतिहासकारों ने सं० १००० निर्णय कर लिया है परन्तु इसके दूसरे चरण के छन्द मे गड़बड़ है। 'सहस्र' की

---

* प्रेमी जी के "जैन हितैषी" में कई ऐतिहासिक लेख निरन्तर छपते रहते हैं जो जैन आचार्यों, इतिहास और साहित्य पर स्वच्छ प्रकाश डालते हैं। धार्मिक दुराग्रह के कारण कुछ जैन उन लेखों की कद्र भले ही न करें, किन्तु वे सत्य ऐतिहासिक खोज और पक्षपात-रहित विवेचन से पूर्ण होते हैं। हिन्दी साहित्य के लिये वे गौरव की वस्तु हैं। [सं०]

जगह 'सोलह' हो तो छन्द और समय दोनों के सामंजस्य का सम्भव है। और प्रथम चरण में षष्ठी के अर्थ में जो 'कर' शब्द दिया है वह पिछली परिपाटी को द्योतित करता है। मिश्रबन्धु सं० ११३७ से नन्द कवि का होना लिखते हैं, परन्तु उन्होंने उसके किसी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है। प्रसिद्ध चन्दवरदाई से पूर्व २-३ मुसलमान कवि और एक चारण कवि का उल्लेख किया है परन्तु लिखा है कि उनके ग्रन्थ देखने में नहीं आए। कवि चन्दवरदाई की कविता का समय सं० १२२५ से १२४९ तक माना जाना चाहिए और हिन्दी की उत्पत्ति का समय सं० ७०० से अनुमान किया गया है। तब से चन्दबरदाई पर्यन्त, साढ़े पांच सौ वर्ष के लगभग, एक बड़ा विस्तृत काल है। न तो इस समय का पूर्ण इतिहास और न कोई विशेष उल्लेख योग्य हिन्दी ग्रन्थ उपलब्ध है। यदि निष्पक्ष होकर सोचा जाय तो संवत् सात सौ आठ सौ मे हिन्दी के ग्रन्थों की रचना होना असम्भव ज्ञात होता है, एकाएक किसी भाषा की उन्नति न हुई है और न हो सकती है।

एकादश शताब्दी में जब विदेशी लोगो के आगमन का प्रारम्भ हुआ और देश-जय के पश्चात् यवन लोगों की यहां स्थिति हुई तब से ही भाषा के बदलने और संस्कृत की चर्चा का ह्रास होने से कवियों को प्राचीन हिन्दी में रचना करने के उत्साह का आरम्भ हुआ। जहां तक इतिहास और ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनसे द्वादश शताब्दी से ही हिन्दी की उत्पत्ति का समय मान लेना अनुचित न होगा। प्राचीन हिन्दी साहित्य की वही बाल्यावस्था है। जैसे अपने को उस अवस्था की केवल दो चार बड़ी बड़ी घटनाओं का स्मरण रहता है, उसी प्रकार उस समय मे न तो अधिक ग्रन्थों की रचना का ही सम्भव है और न अधिक उपलब्ध हैं। इस कारण उस अवस्था का अर्थात् द्वादश से चतुर्दश शताब्दी तक का इतिहास संक्षेप मे सूचित कर प्राचीन जैन साहित्य मे हिन्दी के स्थान का

समय पन्द्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक मान लेना उचित समझता हूं। तत्पश्चात् देश की राष्ट्रीय दशा के साथ साथ साहित्य को भी अवनत अवस्था हुई। पुनः उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में ब्रिटिश सरकार की कृपा से देश में शान्ति के साथ अपनी हिन्दी भाषा की भी उन्नति होने लगी। परन्तु वह पुष्टि नव्य ढंग से हुई और आज हिन्दी में उत्तमोत्तम काव्य, इतिहास और उपन्यास आदि रचे जाकर सब विषयों के ग्रन्थों की पूर्ति हो रही है। नवीन जैन साहित्य भी धीरे धीरे समय के साथ अग्रसर है। हिन्दी साहित्य के विषय में स्वनामख्यात बाबू श्यामसुन्दर जी ई० सं० १९०० की खोज की रिपोर्ट में लिखते हैं कि ई० १२ वीं सदी के प्रारम्भ से १६ वीं सदी के मध्य तक का समय हिन्दी साहित्य की परीक्षा का काल है। उसी समय में राजस्थान के चारणों, भाटों आदि ने बहुत से ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें प्राकृत और प्राचीन हिन्दी मिली हुई है। तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य की पूर्णावस्था का आरम्भ होता है। और ई० १६-१७ वीं सदी में ही हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि और विद्वान् हुए हैं। इसका भावार्थ मेरे पूर्वोक्त कथन को पुष्टि करता है। भाषा की दृष्टि से प्राकृत और हिन्दी का सम्बन्ध अविछिन्न है।

हमारे श्वेताम्बरी जैनों की अपेक्षा दिगम्बरी भाई आज कल हिन्दी साहित्य की अधिक सेवा कर रहे हैं। प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य की पुस्तकें दिगम्बर सम्प्रदाय की ही अधिक संख्या में प्रकाशित हुई हैं। और इसी कारण प्रेमी जी ने अपने जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास में उस सम्प्रदाय के ही हिन्दी ग्रन्थों का विवरण बाहुल्य से किया है। उनका यह लिखना यथार्थ है कि "श्वेताम्बरों का हिन्दी साहित्य अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।" और उनको भी पूर्ण विश्वास है कि खोज करने से हिन्दी के प्राचीन जैन ग्रन्थ बहुत मिलेंगे। अद्यावधि विद्वानों की इस ओर दृष्टि आकर्षित नहीं हुई है और जब तक ऐतिहासिक और भाषा की मुख्य दृष्टि से अच्छी तरह कुछ समय

तक प्राचीन भण्डारों की तथा आचार्य साधुओं के संग्रहों की खोज नहीं होगी तब तक प्राचीन साहित्य रूपी रत्नों का प्रगट होना सम्भव नहीं है। भारत के सभी प्रधान स्थानों में जैनियों का किसी न किसी समय, कहीं अल्प और कहीं विस्तृत, प्रभाव था। दक्षिण का प्राचीन साहित्य भी जैन साहित्य से पूर्ण सम्बन्ध रखता है। यहां तक कि कनाड़ी आदि भाषाओं का सबसे प्राचीन साहित्य जैन साहित्य ही सिद्ध हुआ है। गुजरात और सौराष्ट्र भी जैनियों का प्रधान स्थान रहा है। गुजराती भाषा साहित्य के प्राचीन ग्रन्थ प्राचीन जैन साहित्य ही हैं। वर्त्तमान हिन्दी और गुजराती में क्रम क्रम से बहुत अन्तर पड गया है और कुछ समय से गुजराती भाषा स्वतन्त्र सी हो गई है। परन्तु प्राचीन जैन साहित्य के बहुत से ग्रन्थों को गुजराती जैन साहित्य समझकर हिन्दी जैन साहित्य से अलग करना मैं अनुचित समझता हूं। आदि में स्थानीय कारण से सामान्य अन्तर के सिवाय भारत की उत्तर प्रान्त की भाषाओं में कोई भेद नहीं था। विशेषतया जैनियों की अधिक संख्या के व्यापार वाणिज्य में फंसे रहने के कारण साहित्य चर्चा का काम आचार्य साधु करते रहे और गृहस्थ लोग अवकाश पर उसीका रसास्वादन करते थे। संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राचीन जैन भाषा साहित्य में शुद्ध हिन्दी वा शुद्ध गुजराती ग्रन्थों की संख्या अल्प है। जैन साधु शिष्य परंपरा से होते थे। उनमें देशविशेष का बन्धन न था, कोई मारवाड़ी साधु गुजरात में शिष्य या आचार्य बना, या मालवे का साधु दिल्ली में, तो उन्होंने अपनी रचना में एक साधारण भाषा का आश्रय लिया जिसमें कुछ न कुछ प्रादेशिक छीटों के होने पर भी भाषा पुरानी हिन्दी ही थी। जो गुजराती साधु राजपूताने में गए, उनकी रचना में कुछ कुछ गुजरात प्रान्त के अपभ्रंश शब्दों का समिश्रण होता रहा और विपरीत में इससे विपरीत भी हुआ। तिसरी गुजराती साहित्य परिषद् की लेखमाला में श्रीयुत मनसुखलाल कीरतचन्द मेहता जो जैन साहित्य के निबन्ध में लिखते हैं कि "सं० १४१३ मां बनेलो 'मयण

रेह।' रासमां कई कई मरुभूमिनी भाषानी छाया आवे छे, पण सामान्य घटण गुजरतीनुं छे।" ऐसे ग्रन्थों को हिन्दी में ही स्थान देना उचित होगा। चाहे डिङ्गल चाहे पिङ्गल, चाहे गुजराती चाहे ब्रजभाषा सभी एकही हिन्दी की संतति हैं। देशभेद से अल्पविस्तर भाषा और शब्दों का भेद होता गया है। मैं प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रांतिक विभाग करना उचित नहीं समझता।

वर्त्तमान में जो प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य उपलब्ध हैं उसमे गद्य साहित्य की अपेक्षा पद्य साहित्य की संख्या बहुत अधिक है। जो कुछ हिन्दी मे रचना होती थी, सभी पद्यमय थी। मूल सूत्रों की व्याख्या, तथा टिप्पणी (जिसको 'टब्बा' भी कहते हैं) और संस्कृत प्राकृत धर्मशास्त्र के ग्रन्थों की भाषा, वृत्ति, वचनिका और क्लिष्ट दार्शनिक विषयों पर छोटे छोटे लेखों के सिवा कोई साहित्य के गद्य ग्रन्थ हमारे देखने मे नहीं आए हैं। परन्तु पद्य साहित्य की भरमार श्वेताम्बरी दिगम्बरी दोनों सम्प्रदायों में पाई जाती है। पद्य साहित्य में चरित्र, रास, चतुष्पदी (चौपाई) प्रधान हैं। इनके सिवा चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, वार्त्ता, विनती, वंदना, लावनी आदि भी हैं। स्तवनों की भी संख्या बाहुल्य से मिलती है; उनमें बड़े छोटे कवित्त, छन्द, दोहा, आदि दोनों सम्प्रदायों के उच्च कोटि के कवियों के रचे हुए सैंकड़ों हैं। मूर्तिपूजन से भी भाषा साहित्य में बहुत कुछ सहारा लगा है। खास करके सत्रहवीं शताब्दी से इस विषय पर नाना प्रकार की पूजाओं की रचना दोनों संप्रदायों में मिलती है और साहित्य की दृष्टि से इसका भी स्थान उच्च है। †

---

† जैन विद्वानो को सदा से इतिहास से अधिक प्रीति रही और गुरुभक्ति की मात्रा श्वेताम्बर जैनो मे अधिक थी, इसलिये गुरुओं की 'प्रभावना' के वर्णन के चरित्र, ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण, उनके यहां अधिक मिलते हैं। अब गुजरात के श्वेताम्बर जैनो मे ऐतिहा-

बौद्धो की तरह जैन लोग क्रम क्रम से वैदिक धर्मवालों से द्वेष न बढाते हुए परस्पर का सम्बन्ध दूर नहीं करते रहे, वल्कि वहुत से श्रावक नाममात्र जैनी कहलाने के सिवा सांसारिक आचार व्यवहार आदि वैदिक हिन्दुओं की तरह करते और अद्यावधि करते चले आते हैं। बौद्ध विद्वानों ने वैदिक विद्वानों के ग्रन्थों की मर्यादा नही रक्खो। परन्तु प्राचीन जैन विद्वान् जैनेतर कवियों के साहित्य का वहुत कुछ आदर करते रहे। प्रायः हिन्दुओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध साहित्य ग्रन्थो की अच्छी अच्छी टीकाएं जैन विद्वान् लोग बड़े प्रेम और पाण्डित्य से लिख गये है, इसका यही कारण है कि साहित्य की दृष्टि से जैनेतर विद्वानों के रचे हुए ग्रन्थो को वे लोग अपना ही समझते थे। जैन विद्वानो की बनाई हुई साहित्य के सिवा व्याकरण, न्याय, अलङ्कार, वैद्यक, ज्योतिष आदि के जैनेतर ग्रन्थो की टीकाएं, वृत्ति आदि या उन पर स्वतन्त्र ग्रन्थ वहुत से है। अजैन प्राचीन ग्रन्थों की रक्षा भी प्रायः जैन भण्डारों मे ही हुई जैसा कि उपलब्ध पोथियों का इतिहास कहता है। ब्राह्मणो के पहले दो कर्मों,- अध्यापन और अध्ययन, का प्रकृत अनुसरण जैन आचार्यों तथा साधुओं ने वहुत पूर्ण रीति से किया।

सिक प्राचीन साहित्य की खोज और प्रकाशन की रुचि वढ़ी है जिसका श्रेय मुख्यतः श्री विजयधर्म सूरि जी और उनके योग्य शिष्य श्री इंद्रविजय जी आदि को है। आचार्य जी ने ऐतिहासिक रासमाला, ऐतिहासिक सिज्झायमाला आदि का विवेचनपूर्ण प्रकाशन आरम्भ किया है। जैनो के यहां यह आग्रह नही रहा कि स्तुति, पूजन आदि प्राचीन भाषा मे ही हों। मन्त्र तथा धर्मग्रन्थ प्राकृत में रहते आए, किन्तु स्तुति, गीत तथा प्रवचन देश भाषा मे होता रहा। व्रज की नई कृष्णपूजा मे यदि व्रजभाषा के गीत संस्कृत मन्त्रो की तरह न चल जाते तो अष्टछाप के कवियो की मधुर कवितावली का विकास या प्रचार न होता। जैन स्तवनो तथा गीतों के पुराने संग्रहों मे यह भी

सत्रहवीं शताब्दी को प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य की मध्यावस्था समझना चाहिए। विक्रम संवत् १६११ मे अकबर सम्राट् के गद्दी पर बैठने के पश्चात् बराबर ही भाषा साहित्य ग्रन्थों की संख्या बढ़ती गई। अच्छे अच्छे कवि, विद्वान् इसी समय मे हुए। हिन्दू और जैन आदि सभी सम्प्रदायों के लोगों को इस समय शांति से धर्म और साहित्य की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ, और जो कुछ प्राचीन साहित्य के अच्छे अच्छे ग्रन्थ वर्त्तमान हैं वे सब इसी समय के रचे हुए हैं।

हमारे कवियों को भाषा साहित्य में कहांतक उत्साह था यह

लिखा रहता है कि अमुक गीत किस प्रचलित गीत की ढाल या लय पर गाया जाय, इससे उस उस समय के "अधार्मिक" अर्थात् लौकिक गीतों का भी पता चलता है। जैन साहित्य के सुरक्षित और उपलब्ध होने के मुख्य कारण ये हैं,— प्रधान मंदिरों मे भण्डारों का आवश्यक होना और उनपर सुगठित पंचायत का अधिकार होना; जैनों के यहां पुस्तक लिखवाकर साधुओं तथा यावकों को बांटने को अतिपुण्य कर्म मानना (कई पोथियों की पुष्पिका मे लिखा मिलता है कि अमुक सेठ या सेठानी ने अपने या किसी और के पुण्य के लिये यह लिखवाई); निःसंग साधुओं की अधिकता जो भिक्षामात्र पर निर्वाह करते, किसी प्रकार का परिग्रह न लेते, दिन रात पुस्तकें लिखते और स्वयं उन्हें उठाए फिरते; श्रद्धालु श्रावकों का गुरुओ को कांचन न भेंट करके (जिसका उन्हें कोई उपयोग न था) अपने श्रद्धानुसार ग्रन्थ लिखवाने में व्यय करना (छापाखाने का प्रचार होने पर "श्राद्ध" लोग गुरुनिदेश:से पुस्तको को अतिसुन्दरता से छपवाकर बांटने का समयानुसार परिवर्तन दिखा रहे हैं); गुरुओं को पुस्तकों के अतिरिक्त और प्रकार की संपत्ति न होने से उनकी सम्हाल में विक्षेप न होना, आदि। जैसे आदि प्राकृत साहित्य जैनों का है वैसे आदि अपभ्रंश या आदि हिन्दी साहित्य पर भी जैनों की छाप है। [सं०]

एक ही दृष्टांत से प्रगट होगा कि जैनियों के नवपद की, जिसको सिद्धचक्र भी कहते हैं, महिमा पर उज्जैन के श्रीपाल नृपति की कथा संस्कृत-प्राकृत मे है। उसीपर भाषा मे पृथक् पृथक् कवियों की रचित नौ रचनाएं तो मेरे तुच्छ संग्रह मे हैं और दूसरे भंडारों की खोज करने से और भी मिलना संभव है। इससे यह स्पष्ट है कि भाषा साहित्य पर जैन विद्वानों का पूरा प्रेम था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में रचे हुए श्रीपाल जी के भिन्न भिन्न चरित्रों के आदि और अंत के कुछ काव्य यहा उद्धृत करता हूं—

(१) सं० १५३१ मे उपाध्याय ज्ञानसागर कृत—

आरम्भ—कर कमल जोड़ेवि कर सिद्ध सयल पणमेव।
श्री श्रीपाल नरेंद्र नो रास वंध पभणेव॥

.. ..

अंत—भविया:भावे नित नमो श्रीगुणदेव सूरिपाय।
तास सीस ए रास रच्यो ज्ञानसागर उवझाय॥
पनर एकत्रिसे मिगसिरे उजली वीज गुरुवार।
रास रच्यो सिद्ध चक्र नो गावो श्री नवकार॥
सिद्ध चक्र महिमा सुणो भविया कर्ण धरेवि।
मन वंछित फल दायक ए जे सुणै नितमेव॥
एक मना जे नित जपै ते घर मंगल माल।
ऋद्धि अनंती भोगवै जिम भूपति श्रीपाल

(२) सं० १७२६ कवि ज्ञानसागर कृत—

आरम्भ—सकल सुरासुर जेहना पूजइ भावे पाय।
पुरीसादाणी पासजी ते प्रणमूं चित लाय॥

... ...

अंत—सत्तर छवीसानी आसो वदी आठम दिन सार।
सिद्धि योग कीयो रास संपूरण पुष्यनक्षत्र गुरुवार॥

. . . .

शेरपुर में सरस संबंध ए ज्ञानसागर कहियो रंगे।
धन्यासिरि में ढाल चालिसमी सुणज्यो सहू चित चंगे॥

(३) चार खंड की श्रीपाल चौपाई मे से, जिसकी ७५० गाथा रचने के अनंतर श्री विनयविजय जी का स्वर्गवास हो गया और जिसे श्री यशोविजय जी ने सं० १७३८ मे १८२५ गाथाओ मे पूर्ण किया था। बम्बई के जैन पुस्तक प्रकाशक श्रा० भीमसिंह माणिक ने इसे छपाया है।

आदि—कल्पवेलि कवियण तणी सरसति करि सुपसाय।
सिद्ध चक्र गुण गावतां पूर मनोरथ माय॥
... ...

गुरु परंपरा के विवरण के पश्चात्—

अंत—संवत सतर अड़तीस वरसे रही रानेर चौमासे जी।
संघ तणा आग्रह थी माड्यो रास अधिक उल्लासे जी॥

(४) सं० १७४० मे श्री जिनहर्षसूरि जी कृत श्रीपालरास भी बहुत मनोज्ञ है। यद्यपि इसमें कुछ गुजराती अपभ्रंश शब्द हैं तथापि संस्कृत शब्द इसमे ऐसे चुने चुने गुंथे हुए हैं कि यह ग्रंथ लालित्य में उच्च कोटिका हिंदी साहित्य है।

प्रारम्भ—श्री अरिहंत अनंतगुण धरिये हियडै ध्यान।
केवल ज्ञान प्रकाश कर दूरि हटै अज्ञान॥

अंत—संवत सतरे सै चालिसे, चैत्रादिक सुजगीसै रे।
सातम सोमवार सुभादवसै पाटण विसवावीसै रे॥
श्री खरतरगच्छ महिमाधारी जिनचंदसूरि पटधारी रे।
शांतिहर्ष वाचक सुखकारी तास सीस सुविचारी रे॥
कहे जिनहर्ष भविक नर सुणिज्यो नवपद महिमा थुणिज्यो रे।
उनपचासे ढाले गुणिज्यो निज पातिक वन लुणिज्यो रे॥

(५) उक्त ग्रंथकर्त्ता ने पुनः सं० १७४२ मे अर्थात् दो ही वर्ष के

पश्चात् और एक श्रीपालनृप रास बनाया। इसकी एक प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज लाईब्रेरी में भी मौजूद है (नं० १७२)।

प्रारम्भ—चौविसे प्रणमुं जिन राय,
तास पसाये नवनिध थाय।
सुअ देवी धरि हृदय मंझार,
कहिसु नवपद नो अधिकार॥

अंत—श्री खरतरगछ पति प्रगट, श्री जिनचंद्र सूरीस।
गणि शांति हरष वाचक तणो, कहे जिन हर्ष सुरीस॥

(६) सं० १८३७ मे कवि लालचंद जी रचित श्रीपाल चौपाई।

आदि—स्वस्ति श्री दायक सदा, चौतिस अतिशयवंत।
प्रणमुं बे कर जोड़िने, जगनायक अरिहंत॥

अंत की कविता—

वरस अठारे सै सैतीसे, सुदि आसाढ़ कहीसै जी।
द्वितीया मगलवार सुदीसे, मिथुन संक्रांति जगीसे जी॥
लालचंद निज हित सभाली, विकथा दूरै टाली जी।
हेमचंद्र कृत चरित्र निहाली, चौपई कीधी रसाली जी॥

(७) कवि चेतनविजयजी कृत श्रीपाल चौपाई, स० १८५३ की रची हुई।

प्रारम्भ—देवधरम गुरु सेवके, नवपद महिमा धार।
अरिहंत सिद्ध आचारज, पाठक साध अपार॥

अंत—वाचक रिद्धविजय गुरुज्ञानी,
तास शिष्य सुध चेतन जानी।
रास रच्यो श्रीपाल नो भावे,
जे भणसै सुणसै सुख पावे॥
अठारसे त्रेपन विक्रम शापा।
फागुन सुदि दुतिये शुभ भाषा॥

(८) सं० १८५६ मे रूपमुनि कृत श्रीपाल चौपाई के प्रारम्भ का पद —

प्रथम नमो गुरु चरण कुं पायो ज्ञान अंकूर।
जसु प्रसाद उपगार थी, सुख पावे भरपूर॥

अंत—संवत अठारा छप्पने कहवाया, फागुन मास सवायाजी।
कृष्ण सप्तमी अति हितकारी, सूर्य्य वार जयकारी जी॥
एकतालीसमी ढाल वखानी, रूपमुनि हितकारी जी।
सुनै सुनावै रहै हितकारी, लहै मंगल जयकारी जी॥

(६) वीं चौपाई में संवत नहीं है। इसके कर्त्ता मुनि तत्व-कुमार हैं।

आदि का पद—

आदि पुरुष आदीसरू, आदिराय आदेय।
परमात्मा परमेसरू, नमो नमो नाभेय॥

अंत का पद—

तासि सीस मुनि तत्वकुमार,
तिन ए गायो चरित उदार।

जैन भाषा साहित्य के जो प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं वे आचार्य्य साधुओं के रचे हुए ही अधिक उपलब्ध हैं। श्रावक लोग व्यापार में फँसे रहते थे, और साधु लोग साहित्य चर्चा के प्रेम से उन श्रावक लोगों के उपयोगी विषयों पर ग्रन्थ रचकर अपना पाण्डित्य देखाते थे। जैनों के यति आचार्य आदि चातुर्मास, अर्थात् श्रावण से कार्त्तिक तक, अपने धर्म के नियमानुसार एक ही स्थान में रहने के कारण जिस समय और जिस स्थान में ठहरते थे उसी समय की और जिस नगर में श्रावकों की संख्या अधिक रहती थी उसी स्थान की ग्रन्थ रचना अधिकतया मिलती है। ऐसे नगरों में बनारस, आगरा, दिल्ली, मुर्शिदाबाद, जैसलमेर, जोधपुर, मेड़ता, नागोर, अहमदाबाद, पाटन, सूरत आदि मुख्य हैं।

खेद का विषय है कि भाषा साहित्य की ऐसी बहुलता रहने पर भी हमारे प्राचीन हिन्दी जैन-साहित्य का अभी तक बहुत ही

कम ज्ञान है। इस विषय का जितना ही प्रकाश बढ़ेगा उतनी ही हिन्दी साहित्य की पुष्टि होगी और जैन साहित्य की प्रतिभा दिन दिन बढ़ेगी। प्राचीन जैन साहित्य के द्वादश शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के कुछ उपलब्ध ग्रन्थो का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है।

बारहवीं शताब्दी।

विक्रम संवत् ११६७ मे जैन श्वेताम्बराचार्य श्री अभयदेव सूरि जी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके पट्ट पर श्री जिनवल्लभ सूरि आचार्य हुए और उसी सवत् में थोडे ही समय बाद इनका देहान्त हुआ। आप भी बड़े विद्वान् और प्रभावशाली हुए थे। इनके रचे हुए 'संघपट्टक' आदि सूत्र और कई संस्कृत के ग्रन्थ वर्त्तमान हैं। जहा तक मुझको उपलब्ध हुआ है हिन्दी जैन साहित्य में इनका 'वृद्धनवकार' सब से प्राचीन मालूम होता है। इस स्तुति के अन्त में केवल इनका नाम है। संवत् का उल्लेख नहीं है। परन्तु सं० ११६७ मे इनका स्वर्गवास होने के कारण उक्त ग्रन्थ की रचना का समय सं० ११६७ से पूर्व निश्चित किया जा सकता है। इस सवत् के पूर्व की कोई जैन हिन्दी रचना मुझे नहीं मिली है। इसकी प्रारम्भ की और अन्त की कविता इस प्रकार है—

वृद्धनवकार।

किं कप्पत्तरु रे आयण चिंतउ मण भितरि।
किं चिंतामणि कामधेनु आराहौ बहुपरि॥ १॥
चित्रावेली काज किसै देसंतर लंघउ।
रयण रासि कारण किसै सायर उल्लंघउ॥
चवदह पूरब सार युगे एक नवकार।
सयल काज महियल सरै दुत्तर तरै ससार॥ २॥

… … … … … … … … … … …

अन्त के पद्‌ -

एक जीह इण मंत्र तणा गुण किना वखाणुं ।
नाण हीन छउ मत्थ एह गुण पारन जाणुं ॥ ३४ ॥
जिम सेत्रुंजे तित्थ राउ महिमा उदयवंतो ।
तिम मन्त्रह धुरि एह मंत्र राजा जयवंतो ॥ ३५ ॥
अड़संपय नव पय सहित इगसठ लघु अक्षर ।
गुरु अक्षर सत्तेव एह जाणो परमाक्षर ॥ ३६ ॥
गुरु जिनवल्लइ सूरि भणै सिव सुर के कारण ।
नरय तिरिय गइ रोग सोग वहु दुक्ख निवारण ॥ ३७ ॥
जल थल पव्वय वन गहन समरण हुवे इक चित्त ।
पंच परमेष्ठि मंत्रह तणी सेवा देज्यो नित्त ॥ ३८ ॥

तेरहवीं शताब्दी ।

इस शताब्दी में प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य जी के बनाए हुए संस्कृत प्राकृत बहुत से ग्रन्थ हैं परन्तु उनका बनाया हिन्दी ग्रन्थ कोई नहीं मिला है। केवल उनके व्याकरण में अपभ्रंश और उस समय के प्रचलित ग्रन्थों में से उद्धृत उदाहरण मिलते हैं†। पण्डित नाथूराम जी ने इस समय के निम्न लिखित चार ग्रन्था का उल्लेख किया है—

(१)-जम्बूस्वामी रासा—सं० १२६६, धर्मसूरि कृत।

(२)-रेवंतगिरि रासा—सं० १२८८ के लगभग, विजयसेन-सूरि कृत।

(३) और (४)-विनयचन्द्रसूरि कृत—'नेमिनाथ चउपई' और 'उवएस माला कहाणय छप्पय'।

---

† उनके बनाए हुए कुमारपाल चरित (प्राकृतद्वयाश्रय काव्य) का कुछ अंश अपभ्रंश अर्थात्‌ उस समय की हिन्दी में है, देखो ना० प्र० पत्रिका भा० २, पृ० २२१। [सं०]

चौदहवीं शताब्दी ।

पंडित नाथूराम जी ने इस शताब्दी के ५ ग्रन्थो का उल्लेख किया है। देश में घोर राजनैतिक विप्लव के कारण इस समय मे अधिक ग्रन्थ रचना होने की सम्भावना नही थी तथा अभी तक और ग्रन्थ उपलब्ध भी नहीं हुए हैं ।

(१) सप्तक्षेत्रि रास —सं० १३२७, कर्त्ता का नाम नहीं है ।

(२) सघपति समरा रास ।

(३) थूलिभद्र फागु ।

(४) प्रबन्धचिन्तामणि के भाषा कथानक (?)

(५) कच्छुलि रासा ।

पंद्रहवीं शताब्दी ।

पण्डित नाथूराम जी प्रेमी ने इस शताब्दी के केवल तीन ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है परन्तु इस शताब्दी के और भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इसी समय से भाषा साहित्य उन्नति के सोपान में चढ़ने लगा और सत्रहवी अठारहवी शताब्दी में उच्च शिखर पर पहुंचा ।

(१) सं० १४१२ मे उपाध्याय विनयप्रभ कृत 'गौतम रासा', इसमें चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी का संक्षिप्त चरित्र है। इस स्तुति को लाभदायक और मांगलिक समझकर श्रावक लोग इसका नित्य पाठ करते हैं। यह छोटा ग्रन्थ है और अन्त में सवत् तथा उ० विनयप्रभ का नाम है। प्रेमी जी तथा और लेखक किस कारण से 'विनयप्रभ' के स्थान में इनका 'उदयवंत' या 'विजयभद्र' नाम लिखते हैं यह समझ मे नहीं आता। स्तुति के अन्त में नाम स्पष्ट है।

"विनय पहु उवज्झाय थुणीजै"

(२) सं० १४२३, ज्ञान पंचमी चउपई–विद्धणु कृत ।

(३) सं० १४८६, धमदत्त चरित्र-दयासागर सूरि कृत ।

इस समय के निम्न लिखित ग्रन्थ और भी मिले हैं ।

(४) हंस वच्छ रास ।

(५) शीलरास ।

दोनों के कर्त्ता विनयप्रभ उपाध्याय हैं ।

(६) सं० १४१३, मयणरेहा रास-हरसेवक मुनि कृत ।

(७) सं० १४५०, आराधना रास-सोमसुन्दर सूरि कृत ।

(८) सं० १४५५, शांतरस रास-मुनि सुन्दर कृत ।

पंडित मनसुखलाल कीरतचन्द मेहता ने अपने जैन साहित्य के निबंध में निम्नलिखित तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है ।

(९) सं० १४२३, शिवदत्तरास-सिद्धसूरि कृत (पाटण भंडार)

(१०) सं० १४२६, कलिकालरास-हीरानन्दसूरि कृत (जेसल-मेर भंडार)

(११) सं० १४८५, विद्याविलास रास-(भड़ोच नगर भंडार)

इनके सिवा मुझे (१२) सं १४८१ का उपाध्याय जयसागर कृत 'कुशलसूरि स्तोत्र" मिला है । इसके आदि और अन्त की कविता इस प्रकार है ।

प्रारंभ—रिसह जिणेसर सो जयो, मंगल केलि निवास ।

वासव वंदिय पय कमल, जग सहु पूरे आस ॥'

... ...

अन्त—संवत् चौदह इक्यासी वरसे मुलक वाहणपुर में मन हरषै अजिय जिनेसर वर भवणै ।

कीयो कवित्त पे मंगल कारण विघन हरण सहु पाप निवारण कोई मत संशो धरो मनै ॥ १ ॥

जिम जिम सेवै सुरनर राया श्री जिनकुशल मुनीसर पाया जय सायर उवझाय थुणै ।

इम जो सद गुरु गुण अभिनंदै ऋद्धि समृद्धि सो चिर नंदै मन वंछित फल मुझ हुवो ए ॥ २ ॥

सोलहवीं शताब्दी।

प्रेमी जी ने इस शताब्दी के केवल पांच ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(१) सं० १५४८, सार सिखावन रास-संवेगसुन्दर कृत।
(२) सं० १५६१, ललितांग चरित्र-ईश्वर सूरि कृत।
(३) सं० १५७८, रामसीता चरित्र-बालचन्द्र कृत।
(४) सं० १५८०, कृपण चरित्र ठकुरसी कृत।
(५) सं० १५८१, यशोधर चरित्र-गौरवदास कृत।

बाबू ज्ञानचन्द जैनी ने 'दिगम्बर भाषा ग्रन्थावली' में उपर्युक्त नं० ५ के सिवा 'सं० १५७८, श्रावकाचार-पं० धर्मदास कृत' का उल्लेख किया है।

वकील मोहन दलीचन्द जी ने 'जैनरासमाला पुरवणी' में इसी समय के २३ ग्रन्थों की टीप इस प्रकार लिखी है।

(१) सं० १५०२, ऋषिदत्ता रास
(२) " १५१२, सिद्धांत रहस्य
(३) " १५१३, मच्छोदर रास—लावण्यरत्न कृत।
(४) " १५२२, जम्बूस्वामी रास
(५) " १५२३, जिनभवस्थिति—ज्ञान सागर कृत
(६) " १५३१, धन्ना शालिभद्र रास—देवकीर्त्ति कृत
(७) " १५३४, बारव्रत चौपाई
(८) " १५५०, मुनिपति रास
(९) " १५५३, धनद रास
(१०) " " ललितांग रास—क्षमाकलस कृत
(११) " १५५६, गजसिंह कुमर चौपाई—कविसुन्दर कृत
(१२) " १५६०, नंदबत्तिसी चौपाई—ज्ञानशील कृत
(१३) " १५६१, अजाकुमार रास—धर्मदेव कृत
(१४) " " सुदर्शन सेठ रास
(१५) " " देवराज बच्छराज चौपाई—लावण्यरत्न कृत

(१६) " १५७३, यशोधर रास—लावण्यरत्न कृत

(१७) " १५७६, चंपकमाला—सौभाग्यसागर शिष्य कृत

(१८) " १५८३, धनसार पंचशाली रास—लाभमंडन कृत

(१६) " १५८४, कुलध्वजकुमार चौपाई—धर्मसुरेन्द्र कृत

(२०) " १५८८; आत्मराजा रास—सहज सुन्दर कृत

(२१) " १५६०, इच्छापरिणाम चौपाई—भावसागर कृत

(२२) " १५६४, कृतकर्म्म कुमार चौपाई

(२३) " " तेतली पुत्र रास—कवियण कृत

कलकत्ता गवर्नमेंट संस्कृत कालेज लाइब्रेरी के हस्तलिखित जैन ग्रन्थों की सूची में उक्त शताब्दी के कई भाषा ग्रन्थ हैं। उनमे से कुछ ग्रन्थों का विवरण यहां दिया जाता है।

(१) सं० १५८५, पण्डित धर्मदास गणि रचित 'उपदेशमाला' ग्रन्थ का बालबोध, यह गद्य हैं।

(२) सं० १५५०, रामचन्द्र सूरि कृत 'मुनिपति राजर्षि चरित।' इसके अन्त का पद है—

संवत् पनर पचासो जाणि वदि वैसाख मास मन आणि।

दिन सप्तमी रचिउ रविवार भणइ सुणइ तिह हर्ष अपार॥

(३) सं० १५६२, में मुनि आनन्द का रचा हुआ 'विक्रम पापर रित'। इनके सिवा उस समय के उल्लेख योग्य कुछ ग्रन्थ मेरे संग्रह में है, जैसे;—

(१) पण्डित लावण्यसमय गणि कृत सं० १५६८ का 'विमल मन्त्री रास' और—

(२) सं० १५७५ का कर 'संवाद रास' हैं।

(३) सं० १५७२ का कवि सहज सुन्दर कृत 'गुणरत्नाकर छंद' है। इसके प्रारम्भ की कविता इस प्रकार है—

प्रारंभ—शशिकर निकर समज्ज्वल मराल मारूढा सरस्वती देवी।

विचरति कविजन हृदये सदये संसार भय हरणी॥

हस्ते कमंडल पुस्तक वीणा सोहै नाण झाण गुण लीणा ॥
अपाइ लील विलासं सा देवी सरसई जयउ ॥

इसी प्रकार शारदा की स्तुति संस्कृत प्राकृत हिंदी मिली हुई है।

स्तुति के अन्त के पद्य—

पय पणमुं सरसत्ती माता सुणि एक विण्णत्ती ॥
मांगू अविरल वाणी दियो वरदान गुण जाणी ॥
आणी नव नव बंध नव नव छंदेन नवनवाभावा ।
गुण रयणा यच्छंदं वण्णिसु गुण थूलभद्दस्स ॥
अंधारे दीपक जिम कीजै उजवाले परमारथ लीजै ।
थूलभद्द तिम ध्यान धरंता नाम जपै फल होई अनंता ॥

अंत में रचयिता का नाम और संवत्—

जल भरियां सायर तपै दिवायर तेज करैं जा चंद ।
सहि गुरुपय वंदौं तां लगि नंदौं गुण रत्नाकर छन्द ॥
उवएसगाण मंडण दुरिय विहंडन गिरुया रयण समुद्द ।
उवझाय पुरंदर महिमा सुन्दर मंगल करौं सुभद्द ॥
संवत् पनर बहुत्तरि वरसै ए मैं छन्द रच्यो मन हरषै ।
शिष्यो गणरह नय नय चन्दे सहज सुन्दर बोलौ आणंदे ॥

सत्रहवीं शताब्दी ।

भारत के साहित्य की उन्नति के लिये यह शताब्दी सर्व प्रकार से एक अतुलनीय समय है। इस समय के साहित्य का पूरा इतिहास लिखने से एक बड़ा ग्रन्थ हो सकता है। 'मिश्रबंधु' ने और पांच कवियो का उल्लेख किया है :—

(१) यति उदयराज (२) विद्याकमल (३) मुनि लावण्य (४) गुणसूरि (५) लूण सागर ।

पण्डित नाथूराम जी ने नौ कवियो और उनके मुख्य ग्रन्थों का वर्णन किया है :—

(१) बनारसी दास* (२) कायाग देव (३) मानदेव (४) हेम विजय (५) रूपचन्द (६) रायमल्ल (७) कुंवरपाल (८) जिन दास (६) हेमराज।

इस शताब्दी के और भी उल्लेख योग्य कवियों के नाम और कुछ उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार है—

कवि ऋषभदासजी ने कई अच्छे अच्छे ऐतिहासिक रास रचे हैं जनमें सं० १६६२ का 'राजा श्रेणिक रास' और सं० १६७० का 'कुमारपाल रास' और 'रोहिणीय रास' प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

उपाध्याय समयसुन्दरजी भी श्वेताम्बर साधुओं में एक श्रेष्ठ कवि हो गये हैं। इनकी रचना बहुत सरल है, छोटे बड़े सैंकड़ों ग्रन्थ इनके बनाए हुए मिलते हैं। उनमें से शत्रुंजय रास, शांव प्रद्युम्न रास, प्रियमेलक चौपाई, पोषह विधि चौपाई, जिनदत्तर्षि कथा, प्रत्येकबुद्ध चौपाई, करकंडू चौपाई, नल दमयन्ती चौपाई, वल्कल चीरी चौपाई आदि विशेष प्रचलित हैं। रास चरित्र चौपाई आदि बड़े ग्रन्थों के सिवा श्रावकों के प्रतिक्रमण के समय पाठ योग्य धर्म नीति चरित्रादि पर इनके रचे हुए छोटे छोटे बहुत ग्रन्थ हैं।

---

* ये बड़े भावुक कवि हो गये हैं। इनकी कविता का एक सुन्दर उदाहरण देखिये।

करम भरम जग-तिमिर-हरन खग,
उरग-लखन-पग शिव-मग दरसि।
निरखत नयन भविक जल वरषत,
हरषत अमित भविक-जन सरसि॥
मदन-कदन-जित परम-धरम-हित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसि।
सजल-जलद-तन मुकुट-सपत फन,
कमठ-दलन जिन नमत बनरसि॥ १॥

समयसार नाटक

सं० १६८६ मे पंडित कुशलधीर गणि कृत 'वेलि' का गद्यात्मक बालबोध इस समय के डिंगल गद्य जैन साहित्य का अच्छा नमूना है।

बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने अपनी रिपोर्ट मे सं० १६१६ के कवि ब्रह्मरायमल कृत 'हणुवंत मोक्षगामी कथा' का उल्लेख किया है।

वकील मोहनलाल दलीचन्द जी ने भी इस शताब्दी के बहुत से भाषा जैन ग्रन्थों के नाम प्रकाशित किए हैं।

उक्त शताब्दी के कुछ ग्रन्थों की क्रमवार तालिका :—

	संवत्	नाम	कर्त्ता
(१)	१६०१,	अगरदत्त रास—	सुमति मुनि
(२)	१६०६,	धन्ना रास—	हेमराज
(३)	१६१२,	बारेव्रत रास—	प्रीति विजय
(४)	१६१६,	क्षुल्लक कुमार रास—	सोमविमल
(५)	१६१८,	सतरभेदी पूजा—	साधुकीर्त्ति
(६)	१६२२,	पंचाख्यान चौपाई—	गुणमेरु सूरि
(७)	१६२४,	आषढ़भूति प्रबंध—	साधुकीर्त्ति
(८)	१६२५,	धर्म्मपरीक्षा—	सुमति सूरि
(९)	१६३२,	मुनिमालिका—	चारित्र सिंह
(१०)	१६३३,	क्षुल्लक कुमार चरित्र—	सोमविमल
(११)	१६३४,	बारवली चरित्र—	विजय देव सूरि
(१२)	१६३८,	शत्रुंजय उद्धार स्तव—	नयसुन्दर
(१३)	,,	शालिभद्र चौपाई—	मतिसार
(१४)	,,	आषाढ़ भूति चौढालिया—	कनकसोम
(१५)	१६४४,	सुन्दर सत्ति चौपाई—	आनन्द सूरि
(१६)	१६४५,	रसरत्न सार—	जयचन्द्र
(१७)	१६५०,	अभय कुमार चौपाई—	पद्मराज
(१८)	१६५७,	छिन्नु जिनस्तुति—	जयसोम
(१९)	१६५९,	प्रत्येक बुद्ध रास—	सौभाग्य सुन्दर

	संवत्	नाम	कर्त्ता
(२०)	१६६३,	कर्पूर मंजरी रास	—कनक सुन्दर
(२१)	१६६४,	विजय देव सूरि रास	— कनक सौभाग्य
(२२	१६६७,	जीव स्वरूप चौपाई	—गुण विनय
(२३)	१६६६,	शील रक्षा प्रकाश	– नय सुन्दर

अठारहवीं शताब्दी ।

गत शताब्दी से ही बराबर साहित्य की पूरी जागृति देखने में आती है और इस समय के बहुत से गद्य पद्य ग्रन्थ विद्यमान हैं। प्रेमीजी ने दोनों सम्प्रदायों के २५ विद्वानों के नाम तथा उनके भाषा साहित्य के ग्रन्थों का कुछ हाल दिया है। मिश्रबन्धु विनोद में ६ कवियों का उल्लेख किया गया है। वकील मोहनलाल दलीचन्द जी ने लगभग ३० ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थों की टीप लिखी है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने इस शताब्दी के निम्न लिखित ग्रन्थ और ग्रन्थ कर्त्ताओं का उल्लेख किया है।

(१) सं० १७१५ में अचलकीर्त्ति आचार्य कृत 'विषापहार भाषा'।
(२) सं० १७३१ में धर्मसन्दिर गणि कृत 'प्रबोधचिन्तामणी'।
(३) सं० १७७५ मे मनोहर खण्डेलवाल कृत 'धर्मपरीक्षा'।

कलकत्ता संस्कृत कालेज में इस शताब्दी के जैन भाषा साहित्य की कई उत्तम उत्तम हस्तलिखित पुस्तकें विद्यमान हैं।

इसके अतिरिक्त इस समय के जो भाषा साहित्य के उत्तम ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें से कुछ प्रकाशित हैं और बहुत से अप्रकाशित हैं। कवि लाल विजयजी के शिष्य पं० सौभाग्य विजय कृत सं० १७५० का 'तीर्थमाला स्तवन' अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है*। यह छन्दोबद्ध तीर्थयात्रा का विवरण बड़ी ही योग्यता से बनाया गया है। कवि

---

* यह तीर्थमाला गुजराती में "प्राचीन तीर्थमाला संग्रह" नाम की पुस्तक में छपी है।

आगरे से प्रायः सभी प्रधान तीर्थस्थानों में गये है और प्रत्येक स्थान का वर्णन काव्यरस पूर्ण है। इसके आदि और अन्त के काव्य इस प्रकार हैं—

आरम्भ—

दोहा—आनन्द दाई आगरे प्रणमौ पाय जिणंद।
चिंतामणि चिंताहरण केवल ज्ञान दिनंद॥
समरू' शारद स्वामिनी जिन वाणी सुखदाय।
जास प्रसाद कवियण तणी वाणी निरमल थाय॥
प्रणमी श्री गुरु चरणयुग प्राणी अधिक उल्लास।
तीर्थमाल पूरवतणी करस्यो वचन विलास॥
जहां जहां श्री जिनराज के कल्याणक कहिवाय।
निज नयणें निरख्या जिके देश गाम ने ठाय॥
कहिस्यें ते सघला हिवै सुणज्यो चतुर सुजाण।
सुणतां तीरथमाल नै जनम हुवै सुप्रमाण॥

अंत में—ए तीर्थमाला, अतिरसाला, पंच कल्याणक तणी।
संवत सतरसे पचासे लाभ जाणी मैं थुणी॥
श्री विजयरत्न सूरि गछपति सदा संघ सुहं करो।
गुरु लालविजय तणै पसाए' सौभाग्य विजय जय २ करो॥

इस समय प्रसिद्ध अध्यात्मिक लेखक यशविजय हो गये हैं, जिन्होंने जैन तत्वज्ञान के विषय में (१) अध्यात्म सार (२) समाधि सतक (३) समता सतक (४) द्रव्यगुणपर्याय रास (५) योग दृष्टि स्वाध्याय (६) वीर स्तुति (७) वाहन समुद्र विवाद (८) निश्चय-व्यवहार नय विवाद (९) दिक्पट चौरासी बोल (१०) षट्-स्थान स्वरूप चौपाई आदि कई भाषा ग्रन्थ रचे हैं।

इस शताब्दी के यहां कुछ प्रचलित भाषा ग्रन्थों की तालिका दी जाती है।

संवत्   नाम   कर्त्ता

(१) १७०७, अंजना सुन्दरी चौपाई—भुवन कीर्त्ति
(२) १७१४, गुणावली चौपाई—गजकुशल
(३) १७१६, धर्मनाथ विनती—कीर्त्ति विजय
(४) १७१६, विक्रमादित्य लीलावती चौपाई—सुमति मंदिर
(५) ,, आषाढ़ भूति चौपाई—ज्ञान सागर
(६) १७२१, कयवन्ना चौपाई—जयतसिंह
(७ १७२३, अष्ट प्रकारी पूजा—जिनचन्द्र
(८) १७२४ अमर सेन वयर सेन चौपाई—इन्द्र जी
(९) ,, गुणमंजरी वर.त्त चौपाई—ऋषभ सागर
(१०) ,, विक्रम सेन नरेन्द्र चौपाई—मानसागर
(११) १७२६, अट्ठाईस लब्धि—धर्म सिंह
(१२) १७२७, मानतुङ्ग मानवती चौपाई—अभय सोम
(१३) १७२८, चन्द्रलेहा चौपाई—मति कुशल
(१४) १७२९, चौवीश दंडक स्तुति—धरमसी
(१५) १७३२, नन्दसेन विरोचन चौपाई - आनन्द सूरि
(१६) १७३५, सुर सुन्दरी चौपाई—हर्षविजय
(१७) १७३६, रत्नपाल रास - सूर विजय
(१८) ,, सुर सुन्दरी सती चौपाई—धर्म वर्द्धन
(१९) १७३८, विक्रमादित्य चौपाई—लक्ष्मी वल्लभ
(२०) ,, रात्री भोजन चौपाई—,, ,,
(२१) ,, पंच दण्ड चौपाई— ,, ,,
(२२) १७४१, नेमाहरालियानो रास—लक्ष्मी रत्त
(२३) ,, मोह विवेक रास - धर्म मंदिर
(२४) ,, अवंति सुकुमाल चौपाई - शांति हर्ष
(२५) १७४२, भीम चौपाई—कीर्त्ति सागर सूरि
(२६) ,, कुमार पाल रास—हर्ष सूरि
(२७) ,, धर्म बुद्धि चौपाई—लाल चन्द

	संवत्	नाम	कर्त्ता
(२८)	१७४६,	चित्र सम्भूत चौपाई	जीव राज
(२९)	१७४७,	भक्तामर कथा	विनोदी लाल
(३०)	१७५१,	अजित सेन कनकावली चौपाई	हर्ष सूरि कृत
(३१)	१७५२,	ऋषि दत्ता चौपाई	प्रीति सागर
(३२)	”	उत्तम कुमार चौपाई	विजय चन्द
(३३)	१७५४,	अष्ट प्रकारी पूजा	उदय रत्न
(३४)	१७५७,	दशारण भद्र चौढ़ालिया	जिनचन्द सूरि
(३५)	१५५८,	जंबू स्वामी चौपाई	नय विमल
(३६)	”	वैरसिंह कुमार चौपाई	मोहन विजय
(३७)	१७५९,	श्रेणिक अभय कुमार चौपाई	कीर्त्ति सुन्दर
(३८)	१७६०,	मानतुङ्ग मानवती चौपाई	मोहन विजय
(३९)	१७६६,	सम्यक्त विचार गर्भित महावीर स्तवन	न्यायसागर
(४०)	१७६९,	भुवन भानु केवली रास	उदय रत्न
(४१)	”	जिन रस सिज्झाय	वेणी राम
(४२)	१७७६,	आगम सारोद्धार	देवचन्द्र
(४३)	”	मोक्षमार्ग वचनिका	”
(४४)	१७८३,	सुमति पहेली चौपाई	रायचन्द
(४५)	१७८५,	शांतिनाथ रास	राम विजय
(४६)	१७६८,	माणिक देवी रास	निहाल चन्द
(४६)	१७६६,	संयम श्रेणिक स्तुति	उत्तम विजय

संवत् नंद निधि मुनि चंद, देव दया कर पायो ।
प्रथम जिनेश्वर पारण दिवसें, स्तवतां कलश चढ़ायो ॥

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण सं० १९७८) भा० २, अं० २, पृ० १७१-१८८ ।

सम्पादक का कर्त्तव्य

आज कल जिस ओर दृष्टिपात करते हैं उधर ही सम्वाद पत्रों, मासिक पत्रिकाओं और छोटे बड़े प्रकाशित ग्रन्थो का बहुधा प्रचार देखने में आता है। दैनिक, सप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक आदि सब प्रकार के सामयिक साहित्यपत्र भारत के प्रायः सब ही प्रान्तों से प्रकाशित हो रहे हैं। अजैन सामयिक और स्थायी साहित्य की तो गणना होनी कठिन है; परन्तु प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं में प्रकाशित जैन ग्रन्थों और साहित्य पत्रों की संख्या भी प्रति दिन बढ़ती ही चली जा रही है। किन्तु यह अनुभव सिद्ध है कि थोड़ा सा सुश्रृङ्खलित कार्य बहुत से श्रृङ्खलाविहीन और सत्रुटि कार्य से कहीं अच्छा होता है। कभी २ तो यथावत् न किये हुए काम का होना उस के न होने के ही समान हो जाता है। जैसे किसी पुस्तक का अशुद्ध और नष्ट भ्रष्ट संस्करण विद्वानों की दृष्टिमे बहुत ही दोषनीय होता है। विशेष साहित्य के ग्रन्थों के सम्पादन के लिये बड़े शक्ति-शाली हाथों और व्युत्पन्न मस्तिष्क की आवश्यकता है। मैं सम्पादन के कार्य को दो भागों मे लेता हूं:—

(१) ग्रन्थ सम्पादन।

(२) सामयिक पत्र सम्पादन।

प्रथम सर्व प्रकार के साहित्य प्रचार के कार्य में प्राचीन साहित्य का सम्पादन कार्य विशेष कठिन है। प्राचीन साहित्य के प्रचार के लिये सम्पादक को सर्व प्रथम उस की भाषा पर ध्यान देना होगा। जब तक

विभाग सम्पादकों को या तो हुआ ही नहीं या उन्होंने उसे कार्य में परिणत करना व्यर्थ समझा।

जिस समय देश में मुद्रायंत्र न थे, पुस्तकों के लिखवाने वा प्रकाश करने में बड़ी कठिनाइयां होती थीं; पर जब से छापे की प्रथा भारत में प्रारम्भ हुई हमारी बहुत कठिनाइयां दूर हो गई हैं। परंतु दुःख है कि अपने जैन भ्राताओं ने छापे का उतना लाभ नहीं उठाया कि जितना अन्य हिन्दू भ्राताओं ने उससे उठाया है। हम मुद्रायंत्र का इतिहास देखते हैं तो आज सवा सौ वर्ष से भारत मे छापने का काम चल रहा है। सब से पहिले ईस्वी सन् १७९२ में बङ्गाल में बङ्गले टाइप मे संस्कृत पुस्तक, छापी गई थी। जैन धर्म्म की सब से पहिली छपी पुस्तक, जो मेरे देखने मे आई है, वह ई० सन् १८६८ में मुद्रित हुई थी परन्तु अनेक बार हमारी अनुदारता और अंध विश्वास हमे संसार के साथ समुन्नत होने में सहस्र बाधाएं डालता है। कितनेक महाशय ग्रन्थों के छापने के ही विरोधी हैं कितने ही लिखित पुस्तकों की भूलों के संशोधन के शत्रु हैं यहां तक कि बहुतों को शब्द अलग २ काट कर लिखने और ठहरने के चिन्हों और विरामों के देने का भी विरोध है! समय परिवर्त्तनशील है। हमें संसार के साथ चलना ही नहीं है किन्तु हमें अपने धर्म्म ग्रन्थ साहित्य भंडार और अपने प्राचीन गौरव को सुरक्षित रखना है। इन महत् कार्यों के लिये महत् उद्योग करना होगा। हमारा कार्पण्य, हमारी अन्धपरम्परा, हमारा हठ काम न देगा। इस के बिना फल यह होगा कि संसार प्रकाश में रहे और जैन अन्धेरे गर्त्त में ही पड़े पड़े देखा करें।

कोई ग्रन्थ क्यों न हो उसका गौरव उसके कर्त्ता के हाथ से निकलने पर जो था उतना ही नहीं परन्तु उससे कई गुना अधिक बनाये रखने के लिये हमें आवश्यक है कि हम उन्हें सुपात्र उत्तराधिकारी की भांति अच्छी प्रकार समालोचना और उपयुक्त टीका टिप्पणी के साथ बड़ी सावधानी से प्रकाशित करें। कई प्रकार के मोटे पतले

अक्षरों का और आवश्यकानुयायी लाल पीले रंगो से संकेतों का व्यवहार जो बहुत प्राचीन काल से चला आता है, यह नियम भी सम्पादकों को पूरा ध्यान मे रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ को सुबोध और सर्वप्रिय समय बचाने वाला करने के लिये प्रकाशित करने के समय ग्रन्थ को आवश्यकीय सूचियां दाखिल करनी भी सम्पादक का प्रधान कर्तव्य है। यदि पुस्तक शुद्ध हो नही हुई पूरी छान बीन जांच पड़ताल के साथ छापो ही न गई तो दूसरी गौण बातो पर कौन ध्यान देता है।

यह अधिक समय की बात नहीं है कि मुर्शिदाबाद निवासी स्वर्गीय रायबहादुर धनपतिसिंह जी ने बहुत सा द्रव्य व्यय करके श्वे० जैन ग्रन्थों को सम्पादित कराकर प्रकाशित किया था। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वे पुस्तकें अशुद्धियो के कारण विद्वानों मे यथेष्ट सम्मानित नहीं हुईं। इनके प्रकाशित ग्रन्थो पर श्रद्धेय डाक्टर हार्नल साहब लिखते हैं:—

"As an edition it is worthless, being made with no regard whatsoever to textual or grammatical correctness, both in its Sanskrit and Prakrit portions." (Upasaka-dasa, Bibliotheca Indica Series, Introduction, page xi, Calcutta 1890,)

तात्पर्य यह है कि इन ग्रन्थों के सम्पादन कार्यकर्त्ता को आपने बिलकुल रद्दी बतलाया। परन्तु यह दुःख की बात है कि धन लगाया जाय और लाभ मे उल्टी बदनामी मिले। यह केवल थोड़ी सी असावधानी का ही फल होता है। अतएव उपर्युक्त विषयो पर ध्यान रखकर सम्पादन कार्य सदा धैर्य के साथ करना चाहिये। बङ्गाल की प्रसिद्ध ऐशियाटिक सोसाइटी से डाक्टर हार्नले ने उक्त 'श्री उपासक दशा' नामक जैन श्वेताम्बर आगम का सानुवाद संस्करण प्रकाशित

किया है। आज तक भारत वर्ष से प्रकाशित कोई भी जैन ग्रन्थ इसके मुकाबले में नहीं छपा है। सम्पूर्ण आवश्यकीय टीका टिप्पणियां और सूचियों के साथ ऐसा शुद्ध संस्करण एक आदर्श स्थल है। हाल मे अमेरिका के "Harvard Oriental Series" में हार्टेल साहबने पूर्णचन्द्र गणि कृत "पंचतंत्र" का एक संस्करण सम्पादित किया है। आपने इस कार्य मे लगभग ६० हस्तलिखित पुस्तकों को बड़े कष्ट से दूर दूर से एकत्रित करके मूल को मिलाया है और एक २ अक्षरों को देखा है। कितने ही पाठान्तरों और कथाओं के हेर फेर पर सतर्क वादानुवाद किया है। भूलों का परिशोधन और उपयुक्त प्रस्तावना और परिशिष्टों द्वारा ग्रन्थ को विभूषित करना आप का ही काम है। इतने आन्तरिक गुण होने पर भी बाह्यरूप पर का ध्यान नहीं दिया गया है। मैंने आज तक इतना सुन्दर संस्करण किसी भी भारतीय ग्रन्थ का नहीं देखा। अतएव मैं विश्वास करता हूं कि सम्पादन कार्य इस ही उपर्युक्त प्रकार के आदर्श पर होने से चाहे वे ग्रन्थ प्राचीन हों वा नवीन हो समस्त संसार में सुयोग्य सम्पादन के बल से निस्सन्देह सम्मानित होंगे। अशुद्ध पुस्तकों से बहुधा विद्या के स्थान पर अविद्या ही फैलती है।

पाठकगण यह न समझें कि मैं केवल अपने ग्रन्थ सम्पादन कार्य की त्रुटियां लिख रहा हूं। नहीं प्रत्युत मुझे आज तक यहां के प्रकाशित अमूल्य ग्रन्थों के अच्छे २ संस्करणों का बराबर स्मरण है। अपने जैन श्वेताम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य में बम्बई की श्री आगमोदय समिति तथा रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, सूरत की श्री देवचंद लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, बनारस की श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर की श्री जैनधर्म प्रसारक सभा, जामनगर के पं० श्रीमान हीरालाल हंसराज ने जो २ ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं वे अवश्य प्रशंसनीय हैं। हमारे अच्छे २ दिगम्बर जैन सिद्धान्त ग्रन्थों का इन वर्षों मे जैन सिद्धान्त भवन आरा से, बम्बई की माणिकचंद

जैन ग्रन्थ माला और जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, तथा कलकत्ता की जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था से एवं सूरत के दि० जैन पुस्तकालय तथा लाहौर के स्व० ज्ञानचन्द जी द्वारा प्रकाशन हुआ है। साहित्य प्रेमी श्रीमान् बड़ौदा नरेश की तरफ से गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़ में भी कई जैन ग्रन्थों का अत्युत्तम संस्करण छप चुका है और छप रहा है। बम्बई संस्कृत सिरीज़ मे भी कई प्राकृत, संस्कृत जैन ग्रन्थों का अच्छा सम्पादन हुआ है। इनके सिवाय इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इटाली नार्वे आदि स्थानों में अजैन विद्वानों ने जो कुछ मूल, अनुवाद, टीका टिप्पणियों के साथ ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं उनके लिये समस्त जैन समाज आभारी है।

अब दूसरा विषय सामयिक पत्रों के सम्पादन का कार्य है। यह भी काम बहुत कठिन है। आज कल सम्पादक उसे कहते हैं कि जो महाशय प्रबन्ध लिखें, प्रूफ पढें और पत्र पत्रिका छपवावें। परन्तु यह धारणा भी भ्रमपूर्ण समझना चाहिये। इन कार्यों के सम्पादक का प्रधान कर्त्तव्य उचित विषयों का चुनना, उन पर लिखे लेखों को पसंद करना उन्हें स्थान देना और निष्पक्षपात के साथ पूर्णरूप से सम्पादन का कार्य करना है। यदि सम्पादक स्वयं लिखें तो कोई अपराध नहीं है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि आप औरों के ही लेखों को पढ़ कर उनके गुण दोषों को देखें और सम्पादन के प्रत्येक काम को स्वयं देख रेख करे और स्वयं ही लिखते रहें। परन्तु आवश्यकतानुसार उन्हें अपनी लेखनी से भी काम लेना चाहिये। तो भी मुख्यतः विषयों का सुधार करना ही पत्रों के सम्पादक का प्रधान कार्य होना चाहिये।

पत्रों के सम्पादन में साहस और धैर्य के साथ धन, समय और शक्ति की भी आवश्यकता है। और इन सबों का सदुपयोग सर्वथा वाछनीय है। मेरे विचार से निम्नलिखित कई बात पर ध्यान रखने से पत्र सम्पादन कार्य में सहायता मिलेगी:—

(१) पत्र पत्रिका की भाषा जितनी सुबोध होगी उतनी ही

अधिक पढ़ी जायगी। कठिन भाषा के पत्रों को केवल विद्वान् ही पढ़ते हैं।

(२) पत्र पत्रिका ऐसी प्रकाशित होनी चाहिये कि जिन्हें देखकर चित्त प्रसन्न हो। उनमें काग़ज़ आदि भी ऐसे दिये जांय कि वह कुछ समय अवश्य ठहरें।

(३) उनके मूल्य पर भी ध्यान रखना चाहिये। अर्थशास्त्र के सिद्धांत के अनुसार थोड़े मुनाफे से अधिक माल बेचना, बहुत लाभ से थोड़ा माल बेचने से अधिक लाभदायक होता है। जहां तक बने लागत से दूना दाम रक्खा जाय तो ठीक है। यदि कम करना संभव हो तो और अच्छी बात है।

(४) पत्र पत्रिका प्रकाशित होने पर उनका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये। इस कार्य में देशान्तरों में अधिक अर्थ व्यय करते हैं।

(५) प्रकाशित विषयों पर स्वतन्त्र आलोचना आमन्त्रित करना चाहिये। इससे वे विषय निर्दोष होते जाते हैं और उनकी त्रुटियां भी ज्ञात होती जाती है। कहना बाहुल्य है कि समालोचना से पुस्तक की बिक्री भी बढ़ती है।

अंग्रेज़ी में सम्पादन कार्य के विषय पर कई ग्रन्थ हैं परन्तु यहां इस विषय की चर्चा कम रहने के कारण अपने भारतवासी सम्पादन कार्य में अधिक अग्रसर नहीं हो सके हैं वर्त्तमान समय में इस विषय की आवश्यकता प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इस कारण आशा है कि सम्पादन कार्य के गुरुत्व पर उचित ध्यान रखने से इस देश में भी सम्पादक लोग सफलता प्राप्त करेंगे और सर्वत्र प्रशंसापात्र होवेंगे।

"वीर" वर्ष-२ (१९२४-२५), अङ्क ११-१२ पृ० २९८-३०२

त्रैमासिक शिलालेख

जिस समय दिल्ली के सिंहासन की शक्ति नाना कारणो से दुर्बल हो जाने से विशाल मुगल साम्राज्य में स्थान स्थान पर अशान्ति फैली हुई थी, उस समय का ठीक इतिहास दुष्प्राप्य सा है। उस समय लोग अपनी जान और माल की चिन्ता मे फँसे थे। उनको साहित्य या इतिहास की खबर लेने का अवसर ही न मिलता था। ऐसे समय ब्रिटिश सरकार बङ्गाल प्रान्त मे अपना पाया जमाने के प्रयत्न में लगी थी। यह उसी समय का शिलालेख है।

बहुत से पाठक "रानी भवानी" के नाम से परिचित होगे। उनकी राजधानी मुर्शिदाबाद के पास ही भागीरथी के पश्चिमी तट पर देवीपुर नाम का एक कस्बा है। किसी समय वह साधु महन्त लोगो का लीलाक्षेत्र था। स्थान स्थान से सब श्रेणी के धार्मिक सज्जन वहाँ आकर मन्दिर, मठादि प्रतिष्ठित करके वहीं जीवन व्यतीत करते थे। इस समय देवीपुर का थोड़ा ही टुकड़ा रह गया है। वहाँ महन्त लोगो के तीन अखाड़े थे; बहुत से मन्दिर प्रतिष्ठित थे; और देवसेवा तथा अन्नवस्त्र की अच्छी व्यवस्था थी। आज तक ऐसे अखाड़ो की बड़ी बड़ी टूटी इमारतें और खण्डहर देखने मे आते हैं। मुझे खबर मिली थी कि वहां के एक अखाड़े मे एक बड़ा शिलालेख है। मैंने पता लगाकर जब उस लेख को देखा, तब श्याम पाषाण का २८ इञ्च लम्बा और १४ इञ्च चौड़ा एक विशाल शिलालेख पाया। उसके चारों किनारो मे सुन्दर नक्शे की बेल बनी हुई है। उसके अक्षर उठे

हुए हैं। शिलालेख के मध्य भाग में लंबी रेखा से नीचे का अंश भी दो भागों मे विभक्त है। ऊपर के एक अंश में हिन्दी और नीचे की बाईं तरफ बङ्गला अक्षरों में और दाहिनी तरफ फारसी अक्षरो में लेख खुदे हुए हैं। ऐसा तीन भाषाओं का शिलालेख कम देखने में आता है। इसका चित्र देखने से पाठकगण अच्छी तरह समझ लेंगे। इस शिलालिपि का अक्षरान्तर नीचे प्रकाशित किया जाता है।

सारांश यह है कि विक्रम संवत् १७९१, शकाब्द १६५६ के वैशाख महीने मे अक्षय तृतीया के दिन महाराज गंधर्वसिह ने बहादुरपुर के समीप देवीपुर के दक्षिण गंगा के तट पर जमीन खरीदकर धर्मार्थ हरि-मन्दिर और कूआं तैयार कराया था। लेख में ज़मीन का परिमाण २२ बीघा ८ कट्ठा और उसकी चौहद्दी लिखी है। जमीन रत्नेश्वर की स्त्री से खरीदी गई थी। हिन्दी और बङ्गला में केवल रत्नेश्वर की स्त्री का उल्लेख है; परन्तु फ़ारसी में ब्राह्मण जाति के रत्नेश्वर की ईश्वरीदेवी नाम की विधवा स्त्री से खरीदने का उल्लेख है। फ़ारसी लेख में लेख खोदनेवाले का नाम और राज्य-वर्ष १६ अर्थात् दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के राजत्व का १६ वां वर्ष, हिजरी सन् ११४६ तारीख ६ सव्वाल खुदा हुआ हैं। ईसवी सन् १७३४ से संवत् १७९१ और हिजरी सन् ११४६ मिलता हैं। इस हिसाब से शकाब्द १६५६ होना चाहिये। बंगला मे शकाब्द सोलह सौ स्पष्ट है; परन्तु आगे के अक्षर साफ पढ़े नहीं जाते।

प्रचलित इतिहास में राजा गन्धर्वसिंह का नाम देखने में नहीं आया। गन्धर्वसिंह का बंगाल देशके किसी न किसी स्थान से सबंध अवश्य होगा; और वे कोई साधारण स्थिति के नहीं थे। बँगला अक्षरों में "महाराजा गन्धर्वसिंह बहादुर" और फ़ारसी में "राजा गन्धर्वसिंह" लिखा है। हिन्दी में पहले "नृप गन्धर्वसिंह" और पीछे "महाराजा" भी खुदा है।

लिपि की भाषा के विषय मे यहां केवल इतना ही कहना है कि मैं फ़ारसी भाषा से परिचित नहो हूं, परन्तु शिलालेख की बंगला और हिन्दी भाषा की लिखावट आधुनिक नही है। हिन्दी और फ़ारसी के लेख पद्य मे हैं और बंगला लेख गद्य है। ऐतिहासिक दृष्टि से लेख में जो जो साधन वर्त्तमान है, उनकी खोज की आवश्यकता है।

यह लेख पहले मैंने "वंगीय साहित्य परिषद्" की पत्रिका मे प्रकाशित किया था; परन्तु अभी तक राजा गन्धर्वसिंह के विषय में कुछ विशेष पता नहीं लगा है।

शिलालेख का अक्षरान्तर

(ऊपर के नकशे की बेल मे)

श्रीकृष्ण वासुदेव जू सदा सहाई।

(नीचे के नकशे की बेल मे)

श्री गनेसाय न्म श्री श्री: ॥

(दाहिने नकशे की बेल में)

॥ श्री रघुनाथाय नमः ॥

(बाएँ नकशे की बेल में)

श्री लछमनाय नमः ॥

(ऊपर की तरफ हिन्दी में)

(१) संवत् १७८१ बैसाष मास सुदि तीज ॥ श्री नृप गंधर्वसिंह
भुव मोल ले दयौ धर्म को बीज ॥ देवपुरी अस्थांनु य

(२) ह बाग्र गंग के तीर ॥ जर षरीदी लीनो सोई श्री हरि
सुम्रन कों धीर ॥ रतनेसुर की नारि ने दयौ पुसी करि
मोल ॥ थ

(३) रि रोपी महाराज नें धर्मपुरी अडोल ॥ उत्तर देवीपुर बसे
पछिम गंगा आलि ॥ मेंड बहादुरपुर लगी दछिन

(४) पूरब पालि ॥ बीघा बीस पर दोय हैं आठ बिसे परिमांन ॥
हरि मंदिलु कीन्हों तहा बाध्यो कूप निवान ॥ ५ ॥

(नीचे दाहिनी तरफ बँगला में)

(१) ॐ श्री महाराजा गन्धर्व्वसिंह बहादुर रत्ने

(२) सरेर स्त्रि स्थाने बाग हइते बाइश बीघा आट

(३) काठा इह पश्चिमे गंगार आलि उत्तरे देवि पु

(४) र पूर्व्व दक्षिण बाहादुरपुर जर खरिद लइया

(५) सकाब्दा सोलपसाचा सने वैसाख मासेर अ

(६) क्षय त्रितिया दिवशे हरिमंदिर ओ कूप दिला।

(नीचे बांईं तरफ फारसी में)

(१) राजा गन्धर्वसिंह बहादुर बाग़ करदन्द ज़र ख़रीद शुद नमूद अन्दर हवेली चाह शीरीं अफ़ज़ोद।

(२) मे गिरफ्त अज निज़्द मुसम्मात ईसरी दे०या चौधुद अहलिये रतनेसर ज़ुन्नारदार मुत०वफ़ा वजूद।

(३) बिस्त दो बीघा मवाज़ो हस्त बिस्वे लाख़िराज, हद मग़रिब औज दरियाये मौज दर मौज मिजाज।

(४) पुर बहादुर हर दो सूद मशरिक़ वो जुनूब दारद ज़मीन, ता शुमाल हद देवीपुर मुक़र्रर शुद। अमीन।

(५) अज़ तवारीख़ नहुम शव्वाल दह वो शश सन जुलूस यक हज़ार वो यक सद वो चेहल व शश हिजरी मनुश।

(६) बक़ ख़त रामकृष्ण।

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (नवीन संस्करण, सं० १९८३ भाग ७ संख्या २ पृष्ठ १-५)

राजगृह के दो हिन्दी लेख

भारत की प्राचीन नागरियों में राजगृह की गणना भी है। इस स्थान का वर्णन बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। जैनियों के बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी का जन्म, दीक्षा यहीं हुई थी। उन लोगों के शास्त्रानुसार इस घटना को कई लाख वर्ष बीत चुके हैं। हिन्दुओ के ग्रन्थों मे खास श्रीकृष्ण और जरासंध की कथाओं का स्थान भी यही था। बुद्धदेव का भी यही लीला-क्षेत्र था।

बिहार उड़ीसा प्रांत के बिहार के दक्षिण में गया जिले के समीप वही राजगृह आज तक वर्तमान है। प्राचीन राजगृह नगरी के स्थान निर्देश के विषय मे बड़े बड़े विद्वानों और पुरातत्वज्ञों के विचारों पर मैं विवेचन करने में असमर्थ हूं। केवल इतना ही सूचित करना आवश्यक है कि वहां पर जो कुछ ठण्ढे और गरम जल के कुण्ड विद्यमान हैं, उनका लेख प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में है। आज मैं पाठकों के सन्मुख जो दो हिन्दी लेख उपस्थित करता हूं, वे इन्हीं कुण्डों में लगे हैं। इनमे से पहला लेख संवत् १६०४ का वैभारगिरि के नीचे सतधारा (सप्तधारा) में पूरब की दीवार पर लगा है और दूसरा विपुलगिरि के नीचे सूर्यकुण्ड की पश्चिमी दीवार पर लगा है। दोनों लेख काले पत्थर पर खुदे हैं। इन दोनों लेखों का अक्षरान्तर इस प्रकार है—

पहला लेख

॥ श्री गणेशायनमः ॥

दोहा—आदि अंक युत शि(सि)द्धि निधि ब्रह्मनाम सम लेषि।
ता सम्वत यहि कुण्ड को रचेउ नवीन विशेषि ॥ १ ॥
नृपति जसा को नाम लष छपै मध्य विचार।
राजकुण्ड है नाम यहि महिमा अगम अपार ॥ २ ॥

छपै—जलज असन मानसनिवासि विक्रम कुल देस(श) प( )ल।
जो न जरत ताको अनत नृपस अनुमती(ति) धर्म्म फलि।
पाइन तिय जल जान नारि जाते सुहाग लहु।
क्षिति अरु जुगल लोक भमि जासु कीरति प्रताप बहु ॥
द्वितिय नाम सब शब्द को अर्थ विचारि करि लेषिऐ।
नाम नृपति जस मान को मध्यक्षर महँ पेषिऐ * ॥ २ ॥

तस्य छपै के मध्यक्षर को उदाहरण

कमल अहार मराल उजैन पाताल अजर कुंअर
मलीन पापनि अवला जाहाज सदुर धरती।

दूसरा लेख

श्री हरि ॐ

दोहा—विमल भक्ति रत जानि जेहि, कृपा कराँह रघुवीर।
तेपि धरत पगु धर्म्म मग, लहत सुजस मतधीर ॥ १ ॥
राजगृही ते कोश दस, अग्निकोण अभिराम।
वकसंडापुर बसत जहँ, बाबू सीताराम ॥ २ ॥
धर्म्मधुरन्धर ध्रुव विभव, राज राज सुखदेन।
सप्पुत्र पौत्रादि युत, भोगत राज सुखैन ॥ ३ ॥

---

* महाराज ताजशाँ खाँ बहादुर।

सो सुद्रव्य निज खर्च करि, सुरनर मुनि सुखहेतु।
राजगृही शुभ तीर्थ महँ, बांधे भवनिधि सेतु ॥ ४ ॥

कुण्ड सप्तधारा विरचि, सप्त मुनिन को रूप।
रचि नवीन मन्दिर रुचिर, स्थापे सत्र मुनि भूप ॥ ५ ॥

वेद गगन अरु ग्रह ससि (शशि) हिं, शुभ संवत अनुमान।
ज्येष्ठ सु(शु)क्ल तिथि द्वादसो (शो), सप्तधार· निर्मान ॥ ६ ॥

सम्वत १९०४ ज्येष्ठ सु(शु)क्ल द्वादसी (शी)

लिखा नौबतलाल आत्मज बाबू सीताराम।

नोट—लेखक को वैभारगिरि के उत्तर दिशा में सरस्वती की धारा पर 'वेणीमाधव' के मन्दिर के नीचे बाबू सीताराम का बंधाया हुवा जो पक्का घाट है उसकी दाहिनी ओर श्याम पाषाण में खुदा हुवा ५ पंक्तियों का लेख मिला है, वह इस प्रकार है:—

१ सीताराम बासिंदा
२ मोजे बकसंडा प्रगनाह
३ पंचरुखी जीला गया सम्वत्
४ १९२५ मोताबि (क) सन् १२७५
५ साल

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (नवीन संस्करण, सं० १९८३ भाग ७ संख्या ४ पृ० ४७७-४९१)

स्त्री-शिक्षा

मनुष्य मात्र को शिक्षा की आवश्यकता है। हिताहित ज्ञान ही मनुष्य को पशुओं से पृथक् करता है और इस विवेक का केवल शिक्षा से ही विकाश होता है। चाहे आध्यात्मिक विषय हो चाहे वैज्ञानिक हो एकमात्र शिक्षा से ही वह ज्ञान सम्यक् परिस्फुटित हो सकता है। अतः शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता सदैव रही है। मनुष्य-सृष्टि में पुरुष और स्त्री दोनों का सम्बन्ध अविछिन्न है, दोनों के महत्व में भी कोई पार्थक्य नहीं है। अपने जातीय जीवन में महिलाओं का स्थान भी वैसा ही उच्च कोटि का है जैसा कि पुरुषों का। आप संसार के किसी भी देश में जाइये, किसी भी कौम को देखिये बालक बालिकाओं की शिक्षा का कुछ न कुछ प्रवन्ध अवश्य मिलेगा। यदि माताएं सुशिक्षित हों तो उनके बच्चों पर वही प्रभाव पड़ेगा और वह बचपन की शिक्षा उनके जीवन के शेष मुहूर्त्त तक उसी प्रकार अङ्कित रहेगी। जातीय जीवन की उन्नति और अवनति ऐसी शिक्षाओ पर निर्भर है। कोई भी जाति की सच्ची उन्नति उसी समय हो सकती है जब कि उस जाति की महिलाएं सुशिक्षित हों और उनके विचार उच्च कोटि के हों। जब तक ऐसा न होगा तब तक सच्ची और स्थायी उन्नति सम्भव नहीं है। केवल माता ही अपने बच्चे के सुकोमल हृदय में भावी महत्व के बीज लगा सकती है।

खेद का विषय है कि अपने भारतवासियो में खासकर अपने ओसवाल समाज मे स्त्री शिक्षा का विशेष अभाव है। यदि मैं यह

कहूं कि मेरा यह लेख, जो कि 'महिलाङ्क' के लिये ही लिख रहा हूं, वह अपने समाज की कुछ इनी गिनी स्त्रियों के अतिरिक्त बहिनों की अपेक्षा भाई ही अधिक संख्या में पढ़ेंगे तो असत्य न होगा। परन्तु यदि अपने प्राचीन भारत की स्त्रियों की उन्नत दशा से वर्त्तमान भारत की स्त्रियों की शिक्षा की तुलना की जाय तो हताश होना पड़ता है। चाहे हम भारतीय वैदिक युग को देखें, चाहे जैन युग अथवा बौद्ध युग को देखें, भारतवर्ष में विद्यावती और कलावती स्त्रियां वर्त्तमान थीं।

समाज एक जीती जागती वस्तु है; जैसे जीव देह का कोई अंश अपुष्ट रहे तो उसका प्रभाव और २ अङ्गों पर पड़ता है उसी प्रकार समाज का अङ्ग दुर्बल अथवा अपूर्ण रहे तो उस समाज की उन्नति की आशा करना निरर्थक होगा। पुरुषों की तरह स्त्रियां भी समाज का अङ्ग है और उनका स्थान भी पुरुष के बराबर है। विद्वानों ने स्त्रियों को अर्द्धाङ्गिनी की आख्या दी है। यदि आधा अंग ही निकम्मा रहे तो कोई भी कार्य पूर्ण सफलता से होना सम्भव नहीं है। यद्यपि अपने भारतवासी सभी समाजवाले अपनी २ उन्नति के पथ में और जातीय-जीवन के सुधार में लगे हैं परन्तु इनमें से इने गिने कुछ समाजों के अतिरिक्त और समाज और खास कर अपना ओसवाल समाज स्त्री शिक्षा के विषय में बहुत पीछे रहा हुआ है। अद्यावधि इस विषय का कोई सराहनीय प्रबन्ध नहीं है और इसी कारण समाज कोई विशेष उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर सका है। जिस प्रकार पुरुषों में शिक्षा का आरम्भ हुआ है उसी प्रकार महिलाओं के लिये भी समयानुकूल प्रबन्ध होना चाहिये। खेद है कि अभी तक भारत के किसी प्रान्त में अपने समाज में स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र और काल की कदापि उपेक्षा करना उचित नहीं। अपने को मर्यादा के नाम पर अथवा हठवाद से, आगे की कुप्रथा अथवा समय विरुद्ध आचार व्यवहार को लकीर के फकीर की तरह लेकर बैठे

रहना नहीं चाहिये परन्तु समय और शक्ति नष्ट नहीं करके समयानुकूल सुधार लेना चाहिये। यदि धर्म की अथवा मर्यादा की दुहाई देकर बैठ रहेंगे तो आगे बढ़ नहीं सकेंगे और दूसरे समाज की प्रतियोगिता में पीछे पड़े रहेंगे।

यद्यपि शिक्षा कार्य बाल्यकाल से आरम्भ होता है, परन्तु मनुष्य का सारा जीवन ही शिक्षा का है। हिन्दू समाज में विशेषतः ओसवाल समाज में बाल विवाह से शिक्षा कार्य पर प्रथम कुठाराघात होता है। परदा प्रथा भी मोटी अन्तराय हो जाती है, मैं इन बाधाओं के विषय में अधिक कहना नहीं चाहता इतना ही यथेष्ट होगा कि अब ऐसी २ सामाजिक प्रथाओं का सुधार होना अत्यावश्यक है। मैं पहिले कह आया हूं कि स्त्रियां भी समाज में पुरुषों के ही सदृश स्थान की अधिकारिणी हैं। बाहर का और परिश्रम का कार्य पुरुषों का है। दैनिक गृह कार्य सन्तान पालन व रोगियों की परिचर्यादि कार्य महिलाओं का है, परन्तु इन विषयों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर टेक कर सीखना अथवा शिक्षा पाकर कार्य में अग्रसर होना इन दोनों का अन्तर बुद्धिमान स्वयं सोच लें। यदि समाज की उन्नति करना हो और अपना गृह सुख शान्ति मय करना चाहें तो समाज के प्रत्येक भाई को स्त्री शिक्षा का महत्व सदैव स्मरण रखना चाहिये।

उच्च शिक्षा के विषय में उल्लेख अनावश्यक है, अपने समाज में तो स्त्रियों की प्रारम्भिक शिक्षा का ही अभाव है। "कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणी याति यत्नतः।" अपनी कन्याओं को अति यत्नतः शिक्षा देने के स्थान में अल्प यत्नतः भी शिक्षा नहीं देते। यदि इस विषय में कोई भाई उच्च विचार प्रगट करते हैं तो दूसरे भाई का उत्साहित करना तो दूर की बात है वे कह उठेंगे कि लड़कियों को क्या हुण्डी चलानी है। प्रिय पाठक! अब हुण्डी पुर्जों के दिन गये अब तो सब काम

हा योग्यता पर निर्भर है। यदि स्त्रियां शिक्षित रहे तो सांसारिक जीवन सुख शांति मय होता है। पुरुषों को गृह कार्य में उनसे बड़ी सहायता मिलती है। परन्तु अपने तो उनको एक स्थावर सम्पत्ति-सा मान रखा है। न तो अपने महिलाओं का स्वास्थ्य का ख्याल रखते हैं और न उनकी शिक्षा का। व्यायाम, स्वच्छ वायु सेवन, आदि स्वास्थ्यकर व्यवस्था उनके भाग्य में मानों लिखी हो नहीं है। हजारों के लाखों के जेवरों से लाभ नहीं होगा। उपरोक्त कारणों से अपने समाज की प्रायः स्त्रियां अस्वस्थ रहती है। क्षयरोग, रक्ताल्पता आदि कठिन व्याधि पीड़ित महिलाओं को संख्या बढ़ती जाती है। अवशेष में उनका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। रात दिन वैद्य और डाक्टरो के पीछे अर्थ नाश करना पड़ता है और वे विचारी कष्ट भोगती हैं और साथ हो अपना गार्हस्थ्य जीवन दुःखमय हो जाता है। अतः समाज का कर्त्तव्य है कि पुरुषों की शिक्षा के साथ २ स्त्री शिक्षा का समयानुकूल प्रबन्ध करे, पुरानी रूढ़ियों को हटावे, स्त्रियों के व्यायाम को और शुद्ध आहार विहार और स्वच्छ वायु सेवन आदि की व्यवस्था करे। रोगी चर्या, शिशु पालन, सिवन कार्य, पाक प्रणाली, संगीत चर्चा, चित्रकलादि विषयों पर प्रत्येक बड़े २ स्थानों में तथा प्रत्येक घरों में जहां तक सम्भव हो इस प्रकार अग्रसर होने से थोड़े ही काल में विशेष सफलता होगी। मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है और सुविज्ञ पाठक भी स्वयं अनुभव किये होंगे कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की बुद्धि तीव्र होती है। बालक जो कुछ पाठ महीने भर में तैयार करेगा वही कन्या १५—२० दिन में अभ्यास कर सकती है। खेद है कि उनकी शिक्षा पर अपने तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके विवाहादि की मुख्य चिन्ता रखते हैं। गहने और कपड़े, अलङ्कार वेष भूषादि केवल बाह्य आडम्बर है। शिक्षा ही असली गहना है और उनका सारा जीवन सुखी हो सकता है। कला आदि के अभ्यास से उनको अपने उदर पूर्ति के लिये दूसरों का मुखापेक्षि होना नहीं पड़ेगा। दुःख आने पर विचलित नहीं होंगी। सारांश यह है कि अपने समाज में स्त्री

शिक्षा का और उनकी आवश्यकीय कलाओं के अभ्यास का शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिये ताकि छोटे बड़े धनी निर्धन सब महिलाएं अनायास से शिक्षा का लाभ उठाकर जातीय जीवन उन्नत कर समाज का मुख उज्ज्वल करें।

'ओसवाल नवयुवक' (महिलांक, सं० १९९८ वर्ष ४, संख्या ४, पृ० २१६-२१८)

साहित्य और समाज

साहित्य और समाज का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि यदि कोई इस विषय पर लिखें तो अनायास एक विशाल ग्रन्थ बन सकता है। साहित्य से समाज पर और समाज का साहित्य पर कौन २ समय में किस प्रकार प्रभाव पड़ा, इतिहास अवलोकन से इनके दृष्टान्त बहुधा मिलेंगे। यहां कुछ शब्दों में इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

मनुष्य सृष्टि की एक ऐसी वस्तु है कि उसको अपने मनो वृत्ति विकास के क्षेत्र की सदा आवश्यकता रहती है और चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री हो वह अपने साथी को चाहता है कि जिस के साथ वह अपने विचारों को प्रकट करता रहे। इसी कारण मनुष्य अपनी २ भाषा में चाहे गद्य में, चाहे पद्य मे, अपने २ भावो को विकास में लाते रहते हैं और इसी में उनको आनन्द मिलता हैं। इस प्रकार मनुष्यों के मनोगत भावों का विकास ही साहित्य है और समाज भी कुछ ऐसे लोगों की समष्टि मात्र है। स्त्री पुरुष दोनों ही समाज के अंग हैं और इन युगलों के रहन सहन और विचारों में एकता होने से समाज की सृष्टि होती है। समाज वृक्ष का साहित्य फल हे और साहित्य रूपी फल में समाज रूपी वृक्ष को हराभरा रखने को शक्ति विद्यमान है। मानव जाति के इतिहास से ज्ञात होता है कि इन दोनों ने किस प्रकार एक दूसरे को सहायता पहुंचाई है। जिस प्रकार समाज की परिधि बहुत विस्तृत है उसी तरह साहित्य क्षेत्र भी विशाल है। जैसे

परिश्रम के साथ अनुकूल समय पर खेत में बीज बोने से फल अच्छे मिलते हैं, उसी प्रकार अपने गम्भीर विचारों को ध्यान पूर्वक भाषा द्वारा प्रकाश करने से वह साहित्यिक फल सदा के लिये उपयोगी होते हैं।

मनुष्य के चित्त वृत्तियों को विद्वानों ने प्राचीन काल से ही छः विभागों में विभक्त किया है और वे भाव-श्रोत ही साहित्य जगत में छः रसों के नाम से प्रसिद्ध है। इन छः रसो मे से एक २ की प्रधानता लेकर पृथक २ साहित्य रचे गये हैं। इनके अतिरिक्त साहित्य की और भी शाखायें हैं और प्रशाखा भी अनेक हैं। मिश्र साहित्य की तो संख्या करनी कठिन सी है। साहित्य को प्राचीन, मध्य और वर्तमान के भेद से हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के भी तीन विभाग किये जा सकते हैं। प्राकृत, अपभ्रन्श आदि हिन्दी भाषा का प्रारम्भिक रूप था और सम्भव है कि ईस्वी एकादश शताब्दी के लगभग से हिन्दी का स्वतन्त्र भाषा रूप का अस्तित्व आरम्भ हुआ है। उस समय से षोडश शताब्दि तक हिन्दी का प्राचीन युग मान लिया जा सकता है। सप्तदश शताब्दि से उनविंश शताब्दि के मध्य तक मध्ययुग और उनविंश शताब्दि के मध्य से आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य का वर्तमान युग है। प्राचीन हिन्दी साहित्य जहां तक उपलब्ध है उससे ज्ञात होता है कि उस समय हिन्दी के विद्वानों का धार्मिक और नैतिक विषयो पर ही अधिक प्रेम था। पश्चात् अपना देश विदेशियों के हस्तगत होता गया। उस समय उन विदेशी विधर्मी लोगों के उत्पीड़न के कारण राजनैतिक विषय पर तो कोई लिखने का साहस नहीं कर सकते थे। जान और माल दोनों संकट में थे। लोग उनकी रक्षा में तत्पर रहते थे। परन्तु समाज और साहित्य का अविछिन्न सम्बन्ध है, एक का दूसरे पर पूरा प्रभाव रहता है। इस कारण प्राचीन साहित्य में वीर रस वर्णन के साथ व्यक्तिगत प्रशंसा की रचना अधिकतर

मिलती हैं। राजस्थानी हिन्दी में ख्यात, रासो आदि गद्य पद्य के अनेकों ऐतिहासिक साहित्य मौजूद हैं। साहित्य का प्रभाव भी समाज पर कम न था। बड़ी २ कठिन समस्यायें साहित्य के द्वारा अनायास से हल की गई हैं। कई सौ वर्ष पहिले की बात है कि राजा जयसिंह अपनी नव विवाहिता पत्नी पर मुग्ध होकर रात-दिन अन्तःपुर मे पड़े रहते थे। राज काज चौपट हो रहा था। मन्त्रीगण समझा कर थक गये परन्तु कोई फल न हुआ। समस्त राज्य का अस्तित्व संकट में पड़ गया। भविष्य अन्धकार पूर्ण दिखाई देता था। राजा तथा राज्य की रक्षा करने की शक्ति किसी में दिखलाई नहीं देती थी। इसी समय कविवर बिहारीलाल जी आये और यह दोहा लिखकर राजा के पास भिजवा दियाः—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकाश यहि काल।
अली कली में यों भुल्यो, आगे कौन हवाल॥"

इस दोहे को पढ़ते ही महाराज की आंखें खुल गईं। उन्हें अपने वास्तविक अस्तित्व का पता लगा। बड़े २ राजनीतिज्ञों का दिमाग जो काम न कर सका था वही काम बिहारी जी के गिने गिनाये शब्दों ने कर दिखाया। इनके द्वारा समाज और राज्य की रक्षा हुई। महाराजा राज काज देखने लगे। यह साहित्य के प्रभाव का एक छोटा सा दृष्टान्त है।

मध्ययुग के बहुत समय तक साहित्य और समाज का इसी प्रकार सम्बन्ध चलता रहा। क्रमशः जब देश में शान्ति बढ़ने लगी और लोगों का समाज की ओर विशेष ध्यान खिंचा, उस समय साहित्य पर इसका प्रभाव अधिक पड़ने लगा और साहित्य में सामाजिक विषयों को स्वतन्त्र स्थान मिला। धार्मिक नैतिक, ऐतिहासिक साहित्य के साथ २ उपन्यास साहित्य की रचना होने लगी और इसमे समाज का प्रभाव परिस्फुट होता गया। संगीत और नाट्य

साहित्य से भी समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस समय के हिन्दी साहित्य मे ऐसे विषयों का प्रचार विशेष देखने मे आता है।

वर्त्तमान काल में दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र पत्रिकाओं का अधिक प्रचार है। इन साहित्य से सामाजिक जीवन पर बहुत कुछ प्रभाव पड रहा है। आज महात्मा गांधी आदि देश के महापुरुष गण इनके द्वारा अपने सिद्धान्तों को सफलता पूर्वक प्रचार करने में समर्थ हुए हैं। प्राय. प्रत्येक समाज और प्रतिष्ठित संस्थाओं की एक न एक पत्रिका हैं और वार्षिक विवरण आदि भी प्रकाशित होते रहते हैं। इसी प्रकार समाज और साहित्य की घनिष्टता बढ़ रही है और ऐसे प्रचार से यह सम्बन्ध और भी बढ़ता जायगा इसमें सन्देह नहीं।

'आत्मानन्द' (मार्च १९३२ वर्ष ३. अङ्क ३, पृ० २-४)

रत्न कुंवरी बीबी

जोधपुर के मुन्शी देवी प्रसादजी के नाम से हमारे बहुत से पाठक परिचित होंगे। आप इतिहास के प्रखर विद्वान् थे, मुख्यतः भारत की मुसलमानी अमलदारी एवं मुसलमान बादशाहो तथा देशी राजाओं के जीवन-चरित्र और राजपुताने के तवारिख का आप को पूर्ण ज्ञान था। आपने इतिहास का अध्ययन, मनन और तद्विषयक ग्रन्थ लिखने में ही जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार आप का इतिहास पर अतुलनीय प्रेम देखकर मुझे इस विषय की ओर आसक्ति उत्पन्न हुई थी और आप मुझे वारम्बार उत्साहित किया करते थे।

आज मैं पाठकों के सन्मुख जिन महिला रत्न के विषय में कुछ कह रहा हूं वह उक्त मुन्सिफ साहेब की "महिला मृदुवाणी" नामक ग्रन्थ के आधार पर ही लिखा गया है। यह पुस्तक ई० सन् १९०५ में याने आज से २७ वर्ष पूर्व काशी की प्रसिद्ध नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई थी। आप पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं:—

"भारतवर्ष की पुण्य भूमि में अकेले पुरुष ही चौदह विद्या निधान नहीं हुए हैं वरन स्त्रियां भी समय २ में ऐसी होती रही हैं जो सोने चांदी और रत्न जड़ित आभूषणों के अतिरिक्त विद्या, बुद्धि और काव्य-कला के दिव्य भूषणों से भी भूषित थीं और अब भी हैं। जिनके बखान अनेक पुस्तकों और जन श्रुतियों मे विद्यमान है। पर हम को यहा केवल कविया कांताओ से प्रयोजन है जिन की भाषा कविता का अब तक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया था और

हमने जो भाषा कवियों का इतिहास लिखने के लिये प्राचीन ग्रन्थों और कवि वृत्तांतों की खोज की थी तो उस प्रसंग में कुछ कविता ऐसी भी मिली जो काव्य कुशला कमलाओं के कोमल मुखारविन्दों की निकली हुई थीं। हमने उसीको संग्रह करके यह छोटा सा ग्रन्थ बनाया है और 'महिला मृदुवाणी' नाम रक्खा है।"

इस ग्रन्थ में मुन्शीजी ने ३५ महिलाओं का जीवन-चरित्र और काव्य रचना का वर्णन किया है। इसकी सूची में एक ओसवाल जाती की ललना का नाम देखकर मैंने उत्साह से पढ़ा। सूची की १६ वीं संख्या में "रत्न कुंवरी बीबी, जाती ओसवाल, स्थान काशी और संवत् १८४४" यह लिखा है और इनका वर्णन पृष्ठ ७२-७४ में है। पाठकों के कौतुहलार्थ उसका कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

"ये कविया कुलांगना जगत सेठ मुरशिदाबाद के घराने मे हुई है। इनकी कविता अति रुचिर और रसमयी हैं इन्होंने 'प्रेम रत्न' नामक एक ग्रन्थ संवत् १८४४ में बनाया था जिस का भगवत् भक्तों में बहुत प्रचार है क्योंकि उसमें श्रीकृष्ण व्रजचन्द आनन्द कन्द की लीलाओं का उल्लेख परम प्रेम और प्रचुर प्रीति से किया गया है।"

भारत गवर्नमेण्ट के विद्याविभाग के सुविख्यात ग्रन्थकार राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द जो अभी कई वर्ष पहले तक विद्यमान थे इन्हीं रत्न कुंवरजी के पोते थे। इन्होंने 'प्रेमरत्न' ग्रन्थ के विज्ञापन में अपनी दादी के गुणों का बखान इस प्रकार किया है।

"वे संस्कृत में बड़ी पण्डिता थीं। छओं शास्त्र की वेत्ता, फारसी भाषा भी इतनी जानती थीं कि मौलाना रूम की 'मसनवी' और 'दीवान शमसतबरेज़' जब कभी हमारे पिता पढ़ कर सुनाते तो झट उसका सम्पूर्ण आशय समझ लेतीं। गाने बजाने में अत्यन्त निपुण थीं और चिकित्सा यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार की जानती

थीं। योगाभ्यास में परिपक्व और यम नियम और वृत्ति ऋषि मुनियों की सी, सत्तर वर्ष की अवस्था में भी बाल काले और आंखों की ज्योति बालकों की सी, वह हमारी दादी थीं इससे हम को अब उनकी अधिक प्रशंसा लिखने मे लाज आती है परन्तु जो साधु सन्त और पंडित लोग उस समय के उनके जाननेवाले काशी में वर्तमान हैं वे उनके गुणोंको अद्यावधि स्मरण करते हैं।"

"प्रेमरत्न" के मंगलाचरण और समाप्ति के कुछ सोरठों के नमूने यहां दिये जाते हैं:—

मंगलाचरण

अबिगत आनन्द कन्द, परम पुरुष परमातमा।
सुमिरि सुपरमानन्द, गावत कछु हरि यश विमल ॥ १ ॥
पुनि गुरुपद शिरनाय, उर धरि तिनके वचन वर।
कृपा तिनहिं की पाय, प्रेमरतन भाषत रतन ॥ २ ॥
अगम उदधि मधि जाहि, पंगु तरहि विनु जिमि तरणि।
त्यौं सिय रुचि मन याहि, अमित कान्ह यश गानकी ॥ ३ ॥
... ...

प्रशस्ति

अठारह सै चालीस, अंत चतुर वर्ष जब वितत भय।
विक्रम नृप अवनीस, भए भयो यह ग्रन्थ तब ॥ ४ ॥
माह माह के माह, अति शुभ दिन सित पञ्चमी।
गायो परम उछाह, मङ्गल मङ्गल वार वर ॥ ५ ॥
कह्यो ग्रन्थ अनुमान, त्रय शत अरसठ चौपई।
तिहि अर्ध रु अटजान, दोहा सोरह सोरठा ॥ ६ ॥

काशी नाम सुठाम, धाम सदा शिव को सुखद।
तीरथ परम ललाम, सुभग मुक्ति वरदान छम ॥ ७ ॥
ता पावन पुर माहि, भयो जन्म या ग्रन्थ को।
महिमा वरणि न जाहि, सगुण रूप यश रस भरो ॥ ८ ॥
कृष्ण नाम सुख मूल, कलिमल दुख भंजन भजत।
पावहि भवनिधि कूल, जाके मन यह रस रमहि ॥ ९ ॥
कुरुक्षेत्र शुभ थान, ब्रजवासी हरि को मिलन।
लीला रस की खान, प्रेम रत्न गायो रतन ॥१०॥

बङ्गाल हाते के जैन शिला लेखों की खोज में मैं जगत सेठ वंशके इतिहास का भी पता लेता रहा। ई० सन् १९२३ में जब कलकत्ते में 'इण्डियन हिस्टरिकल रेकर्ड्स कमीशन' बैठा था उस समय मैंने जगत सेठ की वंशावली पर एक निबन्ध पढ़ा था और उक्त रत्न कुंवर बीबी के विषय में मुझे जो साधन मिले थे उसका सारांश यह है कि वह लखनऊ के राजा बच्छराज की कन्या थीं और राजा शिवप्रसाद जी के पितामह राजा उत्तमचन्द जी से उनका विवाह हुआ था और उनके पुत्र कुंवर गोपीचन्द जी थे। कुंवर गोपीचन्द जी के पुत्र ही प्रसिद्ध राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे और उनकी कन्या गोमती बीबी थीं। आप भी बड़ी धर्म्मात्मा और विदुषी थीं। 'गुणस्थान क्रमारोह' आदि कठिन जैन विषयों का आपने अच्छा अभ्यास किया था।

मुर्शिदाबाद के जगत सेठ घराने वालों से रत्न कुंवरजी के सम्बन्ध के विषय में कुछ लिख देना उचित होगा।

जगत सेठ वंश के पूर्वज साह हीरानन्द जी प्रथम बङ्गाल आये थे। इनके सेठ माणिकचन्द जी वगैरह सात पुत्र और धनबाई नाम की एक कन्या थी जिन का विवाह आगरा निवासी राय उदयचन्द जी गोखरू से हुआ था। इनके चार पुत्र थे जिन में तीसरे पुत्र फतेचन्द जी को सेठ माणिकचन्द जी ने गोद लिया था और इन्हें ही दिल्ली के बादशाह

फर्रुखशियर ने प्रथम जगत सेठ की पदवी दी थी। राय उदयचन्द जी के मध्यम पुत्र सभाचन्द जी थे, इनके पुत्र अमरचन्द जी और उनके पुत्र राजा डालचन्द जी बनारस बसे। इन्हीं के पुत्र राजा उत्तमचन्द जी की धर्मपत्नी यह रत्न कुंवर थीं आप के पुत्र गोपीचन्द जी और पौत्र प्रसिद्ध राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द हुए।

भारतीय भाषावित्प्रसिद्ध विद्वान् सर जी० ए० ग्रियर्सन साहेब ने भी 'Modern Vernacular Literature of Hindustan' नामक ग्रन्थ के पृ० ६६ मे रत्न कुंवर के विषय मे क्रमिक नं० ३७६ में वर्णन किया है। ग्रन्थकर्त्ता स्वयं उनके पौत्र राजा शिवप्रसाद जी के मित्र थे और इनके विषय में राजा साहब ने ग्रियर्सन साहब को सन् १८८७ में जो पत्र लिखा था उसका सारांश यह था कि बीबी रत्न कुंवर जी लगभग ४५ वर्ष हुए कि स्वर्गवास हुआ था उस समय राजा साहब की अवस्था १६ वर्ष की और उनकी पितामही की ६० और ७० के बीच की थी। 'प्रेमरत्न' ग्रन्थ के अतिरिक्त आप के रचे और भी बहुत से पद्य हैं तथा अपने हाथ की लिखी प्रति मौजूद है। आप संस्कृत जानती थीं और राजा साहब आप से बहुत कुछ शिक्षा पाये थे। हस्ताक्षर आप के सुन्दर थे तथा संगीत पर आप का प्रेम था, कुछ २ फारसी भी पढ़ी हुई थीं।

The Heritage of India Series में ए० कवै० साहब ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है, उस पुस्तक के पृ० ७६ में बीबी रत्न कुंवरि और उनके 'प्रेमरत्न' ग्रन्थादि की रचना का उल्लेख है।

आशा है कि हमारे प्रिय पाठकगण ओसवाल समाज में और जो २ विदुषिया हो गई हैं उनकी खोज कर पूरा इतिहास प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

'ओसवाल नवयुवक' (सं० १९८६ वर्ष ५, अङ्क ५, पृ० १८७-१८९)

मगाशिष

वीरात् ७० वर्ष, संवत् २२२ अथवा और किसी समय में श्री रत्नप्रभ सूरि जी ने उपकेश (ओशिया) नगर-निवासी राजपूत आदि लोगों को जैनी बनाया था। उस समय उन लोगों के पुरोहितों ब्राह्मणों ने उनका पौरोहित्य कर्म्म छोड़ दिया था। ऐसी दशा में जिन लोगों ने वैदिक धर्म छोड़ कर जैन धर्म स्वीकार किया था; उन्हें बहुत अड़चन पड़ने लगी, कारण, गृहस्थाश्रम में विवाहादि संस्कारों की बराबर आवश्यकता रहती है। उस समय वहां के मग-ब्राह्मण लोगों ने इस इकरार पर उन लोगों का पौरोहित्य स्वीकार किया कि वे लोग बराबर पीढ़ियों तक इन ब्राह्मणों को निभावें और ये लोग भी सिवाय इन जैनियों के दूसरे से याचना न करें। ये ब्राह्मण आजकल भोजक के नाम से प्रसिद्ध हैं—वैदिक धर्म पालते हैं और जैनियों को यजमान मानते हैं। विवाह के पश्चात् वर कन्या तथा उपस्थित लोगों को ये लोग जो आशिष और मङ्गल सुनाते हैं वे जैन दृष्टि से भी महत्व के हैं। इन भोजक ब्राह्मणों का उल्लेख ओशियां स्थित सचियाय माता के मन्दिर के संवत् १२३६ के शिला लेख* में पाया जाता है। ये मारवाड़, बीकानेर, राजपूताने मे ही अधिकतर हैं और जैनियों के पौरोहित्य के अतिरिक्त उन लोगों के मन्दिरों मे भी पुजारी का काम करते है। परन्तु खेद का विषय है कि इन लोगो मे विद्या का प्रचार बहुत कम है, यह अधिकतया अशिक्षित होते हैं। प्राचीन काल में

---

* 'जैन लेख संग्रह' भाग १, पृ० १९८ लेख नं० ८०४।

इन में कविवर वृन्द जो आदि विद्वान हो गये है। उनके वंशज पं० जयलाल जी शर्मा कृष्णगढ़ दरबार के महकुमा तवारीख में थे। उन्हों ने 'सगाशिप भाष्य' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी जिस में आशिप के दो अर्थ अर्थात् स्मार्त धर्मानुसार और जैन सिद्धान्त के अनुकूल लिखे है। इस आशिप की रचना किसी समय चाहड़ नाम के भोजक ने छप्पय में की थी। प्रस्तुय विषय संख्यावाची शब्दों में है। और वे लोग जो मङ्गल कहते हैं उस कविता में रचयिता का कोई नामोल्लेख नहीं है। और मङ्गल में प्रथम कवित्त और पीछे छन्द हैं और उसी प्रकार संख्यावाची शब्द हैं। यह मङ्गल मैंने अद्यावधि कहीं भी प्रकाशित हुआ नहीं देखा हैं, इसको कविता इस प्रकार है:—

> वदन अट्टकर दोय जीभ पन्द्रह बखानूं
> सोलह नयन सुचेत चरण को अन्त न जानूं।
> कई चरण हैं गुप्त दोय में परगट दिट्ठा
> कहीं जीभ विष वसे कहीं रस चवे सुमिट्ठा।

> कर दोय देह एक पूंछड़ी सकल चल्य रस चवै
> प्रसन देव हम तुम सदा सो अर्थ पूछ पण्डित लभे॥

२४ २४ २४ २४

> अठतीया चौढका पारेद्रना अठतीगुना अरिहंत मङ्गलं।

> मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमप्रभु
> मङ्गलं स्थूलभद्राद्याः जैनधर्मोस्तु मङ्गलं॥

मङ्गल में प्रथम श्रीपार्श्वनाथ की स्तुति है। यहां पाठकों को यह सूचित करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकर रहते हुए पार्श्वनाथ की स्तुति करने की आवश्यकता यह हुई कि उनके पट्ट परम्परा में जो उपकेशगच्छ था उसके आचार्य रत्नप्रभ सूरि थे और उनके द्वारा जैनी बनाये जाने के कारण कवि ने पार्श्वनाथ का ही स्मरण किया है।

वदन अष्ट से भगवान् का एक मुख और उनके ऊपर छत्र किये सर्पों की संख्या सात लेकर आठ मुख हुए, कर दोय से भगवान के दो हाथ–कारण, सर्पों के हाथ नहीं होते, जीभ पन्द्रह से सर्प द्विजिह्वा होने के कारण उनके चौदह और भगवान के एक, सोलह नयन से सर्पों के चौदह और उनके दो, "चरण को अन्त न जानु" पद से सर्पों के पदों की संख्या नहीं कही जा सकती यह सूचीत करते हुए कवि ने फिर कहा है "कई चरण हैं गुप्त दोय मैं परगट दिट्ठा" अर्थात् भगवान के दो चरण प्रत्यक्ष हैं और सर्पों के अदृश्य, कहीं जीभ विष वसे से सर्पों को जीभ में विष रहता है और कहीं रस चवै सुमिट्ठा से भगवान के जिह्वा में अमृत रहना सूचित करता है इत्यादि।

आगे के संख्यावाचक शब्दो के अर्थ इस प्रकार होते हैं।

अठतीसा से २४ होता है यह चौबीस केवल ज्ञानी आदि अतीत तीर्थंकरों की संख्या है, चौछका से जो २४ होता है उससे ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकरों की संख्या और वारेदूना से २४ होता है उससे पद्मनाभ अनागत चौबीस तीर्थंकरों की संख्या हुई, अठतीगुना से भी २४ होता है—ऐसे २४ अर्हन्त मंगल करें। अन्त में जो संस्कृत श्लोक हैं वह जैनियों में प्रसिद्ध है।

अब आशिष का छप्पय और जैन धर्मानुसार उसका अर्थ पाठकों की सेवा मे उपस्थित किया जाता है:—

२७ ७ ८ १८ ३० ६ ६ ९ ३६ ३ १३ ३३
सत्ताईसै सात आठ अट्ठारह तीसां छै छै नवै छत्तीस तीन तेरह तैंतीसां
४२ ५२ ४ १२ ७२ ३॥ ६४ ५ १५ १
बयालोस बावन्न चार बारह बहोत्तर। आऊंटै चोसट्ठ पांच पनरह एकोवर
९ ९ १४
नव-नवै चवदह रयण दिन चाहड़ जप्पें अभय भुव।
गुरु मुख प्रमाणहि ग्यान सूं ए ते रछ करंत तुव॥ १॥

सत्ताईस से प्राणातिपात विरमण व्रतादि साधु के २७ गुण अर्थात् ऐसे गुणालंकृत साधुओं का सम्मान करना जैनियों का कर्त्तव्य है। सात से नैगमादि ७ नय अर्थात् इन सब नय को मिला कर स्याद्वाद नय से जैनियों को चलना चाहिये। आठ से ज्ञानावरणी आदि आठ कर्म अर्थात् आप लोग इस को क्षय करने मे समर्थ हो (इन कर्मों से छूटने से ही मुक्ति होती है)। अठारह से प्राणातिपात आदि १८ पापस्थान अर्थात् इन पापस्थानो से बचते रहें। तीसां से मोहिनी कर्म के तीस भेद अर्थात् मोहिनी कर्मो से दूर रहें। छ से पृथ्वीकाय आदि ६ प्रकार के जीव अर्थात् इनकी रक्षा करें। छ से ग्रीष्मादि ६ ऋतु अर्थात् ये ऋतु सुखदायी हों। नवे से वस्ति आदि ९ वाड़ अर्थात् शील की नववाड़ रक्षा करो। छत्तीस से प्रतिरूप आदि आचार्य के ३६ गुण अर्थात् ऐसे गुणवान आचार्यों की सेवा करें। तीन से मन गुप्ति आदि तीनों गुप्तियो से सर्व जीवों की रक्षा करो। तेरह से आलस आदि १३ काठिया से बचते रहो। तेतीसां से ज्ञान दर्शनादि का ३३ आशातना नहीं करना चाहिये। बयालीस से आधा कर्मी आदि आहार के ४२ दोष से निर्दूषित आहार साधुओं का देते रहो। बावन से अनाचारादि के जो ५२ अनाचार हैं उनको टालते हुए जो संयमी साधु हैं उनकी सेवा करते रहें। चार से दानादि धर्म के चारो मार्ग मे तत्पर रहें। बारह से अनित्यादि १२ भावना भावते रहें। बहोत्तर से अतीत, वर्त्तमान और अनागत समस्त तीर्थंकरों को ध्याते रहें। साढ़ेतीन' अर्थात् साढ़े तीन—इससे यह सूचित होता है कि साढ़े तीन करोड़ रोमावली की चौवीसों तीर्थंकर रक्षा करें। चौसठ से चमरेन्द्र आदि ६४ इन्द्र रक्षा करें। पांच से मति आदि ५ ज्ञान की प्राप्ति हो। पनरह से तीर्थसिद्ध आदि सिद्धों के १५ भेद सोचित होते हैं उनमें भी मग्न रहें। [illegible] से राग द्वेष आदि दोषों से रहित सर्वज्ञ सर्वगुण

मय एक परमात्मा सदा ध्यान में रहे। नव से जीव आदि ९ तत्व सूचित होते हैं। इनका भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। नवै से अरिहन्त आदि ९ पद होता है इनको सदा स्मरण रखें। चौदह से उत्पादना आदि १४ पूर्व ज्ञात होता है इनका सारभूत पूर्वोक्त नव पद है। इन पूर्वों से ज्ञान प्राप्त हुए धर्मोपदेशकगण आप लोगों की ज्ञान वृद्धि करें। अन्त मे चाहड़ नाम के कवि जप्पै अर्थात् कहते हैं कि भुव अर्थात् पृथ्वी मे रयण दिन (रात दिन) आप लोग अभय (निर्भय) रहें। मैंने ये सब ज्ञान गुरुमुख प्रमाण से कहा है ये सब आप लोगो की रक्षा करते रहें। इस शेष पद के विषय मे कवि जयलाल जी से मेरा मत-भेद है जिसे 'मगाशिष भाष्य' के पृष्ठ ४२ मे उन्होंने कृपया सूचित किया है। आप 'हिन्याण' को 'हत्याण' सिद्ध करते हुए उसका अर्थ यह करते हैं कि जिस समय जैनियो ने अपने पुरोहित भोजको को लाग मर्याद नही दी उस समय उन लोगो ने आत्मघात किया। पश्चात् जैनी लोग लाग मर्याद देने लगे और आशीर्वाद मे कहते हैं कि उनको हिल्याण (हत्या) से एते (२७ से १४ तक) तुव अर्थात् तुम्हारो (यजमानो की) रक्षा करें। मेरे विचार से उनका पाठ और अर्थ (देखो पृ० १०,२२) सर्वथा भ्रमपूर्ण विदित होता है। कारण प्रथम तो आशीर्वाद में हत्या आदि शब्दो का प्रयोग नही होता क्योंकि यह अमंगलवाची शब्द है। दूसरे यह कि जब भोजक ब्राह्मण थे तो एक सामान्य लाग के लिये आत्मघात, जो कि उनके धर्मानुसार भी महा-पाप समझा जाता है, नही किये होंगे। यदि किसी कारणवश ऐसी घटना हुई भी हो तो ऐसे निन्दनीय विषय को प्रसिद्धि मे लाना सम्भव नही दिखता।

अद्यावधि भोजक लोग श्रीपार्श्वनाथ की स्तुति मे अच्छे २ कवित्त रचना करते है। एक नमूना देखिये :—

जनम बनारस थान, मात वामा कुलनन्दन।
पिता राय अश्वसेन, कमठ को मान विहडन॥

पंचेन्द्रि वश करन, एक आसन चित लायो।
बरष्यो मेघ अपार, आन वासुक फण छायो॥
उपज्यो केवल ज्ञान, आन सुर दुन्दुभि वज्जै।
चौसठ इन्द्र आन, मिल सिंहासन छज्जै॥
तीन लोक तारण तरण, श्रीपार्श्वनाथ निशदिन जपो।
श्री ऋद्धि सिद्धि मंगल करन॥

'आत्मानन्द' (मार्च १९३३ वर्ष ४, अङ्क ३, पृ० १८-२१)

कुएँ भाँग

राजस्थान मे "कुएँ भाँग" की कहावत प्रसिद्ध है। मारवाड़ की मरुभूमि में पानी भूगर्भ के बहुत निम्नस्तर में रहता है, इस कारण वहां कुआँ, बावली आदि बनाना व्ययसाध्य है। बङ्ग, बिहार आदि प्रान्तों की तरह वहां घर-घर में कुएँ नहीं रहते। जैसलमेर प्रदेश के कई ग्रामों में तो कोसों से पानी लाया जाता है; परन्तु साधारणतः राजपूताने के गांवों में एक ही कुआं होता है, उसीका पानी सब लोग व्यवहार करते हैं। ऐसी दशा में यदि कुएँ में भांग डाल दिया जाय, तो उसके पानी पीनेवाले सब लोगों को नशा हो जाना अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि किसी बड़े से कभी कोई भ्रम हो गया, तो सभी लोग वही भ्रम कर बैठते हैं। 'गोरा बादल की कथा' पर भी यह बात ठीक घटती है।

डिंगल साहित्य के 'गोरा बादल की कथा' का नाम तो मैं बहुत दिनों से सुनता आता था, और उसकी एक हस्त-लिखित प्रति मेरे संग्रह में भी थी; परन्तु उसके विषय में और अधिक मुझे ज्ञात न था। कुछ समय हुआ बीकानेर-निवासी इतिहास-प्रेमी श्री भँवर-लाल जी नाहटा ने मुझ से कहा कि इस 'वारता' के रचयिता कवि जटमल नाहर गोत्रीय ओसवाल थे। इस बात को सुनकर मेरी इच्छा उनके विषय मे और अधिक जानने को हुई। मालूम हुआ कि वे लाहोर के निकटवर्ती सिंबुला (सुबला, सबल) ग्राम के रहनेवाले थे। वे एक अच्छे कवि थे। वे जैनधर्मावलम्बी थे, और उनकी धर्म पर

विशेष श्रद्धा भी थी। धार्मिक विषय पर उनकी बनाई हुई 'बावनी', 'प्रेमरास' आदि रचनाएं मिलती हैं। 'लाहोर की गज़ल' उनके दूसरे काव्य का पता मिला है। 'गोरा बादल की कथा' की अन्य प्रतियों की खोज में मैं बराबर रहा। मेरी प्रति संवत् १७८० की लिखी हुई है; परन्तु कई स्थानों में उसके कुछ अंश नष्ट हो गये हैं। बीकानेर से श्री भंवरलाल जी ने राजपूताने के कोटा शहर में सं० १७५२ की लिखी हुई एक प्रति मुझे भेजी थी, जिसकी नकल मेरे पास है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व डिंगल के अध्यापक जोधपुर निवासी पं० रामकर्णजी ने एक पुरानी प्रति की नकल स्वहस्त से लिखकर भेजी है। इस में कोई लिखन संवत् नहीं है। गत वर्ष जब मैं अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के अवसर पर अजमेर गया था, उस समय सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् महामहोपाध्याय राय बहादुर पं० गौरीशंकर ओझा ने मुझसे कहा था कि बीकानेर-स्थित डूंगर-कालेज के अध्यापक पं० नरोत्तमदास जी जटमल-रचित 'गोरा बादल की कथा' का सम्पादन कर रहे हैं। कवि जटमल नाहर गोत्र के महाजन थे, इसलिये आप के पास उनके विषय में जो कुछ सामग्री हो, उनको भेज दें, तो इस कार्य में उन्हें विशेष सहायता मिलेगी। मैं ने इसे सहर्ष स्वीकार कर अपने पास उनके विषय में जो सामग्री थी, उन्हें भेज देने को कहा। ओझा महाशय ने उनको मुझ से पत्र-व्यवहार करने को लिख दिया। कलकत्ते लौटने पर मुझे यथासमय अध्यापक नरोत्तमदास जी का पत्र मिला, जिस का आवश्यक अंश यहां उद्धृत है:—

प्रतियां हमने प्राप्त की हैं। सम्पादन और टिप्पणी का बहुत कुछ कार्य हो चुका है। जटमल के विषय में विशेष हाल प्रयत्न करने से भी हमें ज्ञात नहीं हो सका। अजमेर के सुप्रसिद्ध विद्वान् गौरीशंकर जी ओझा से हमने पूछ-ताछ की, तो उन्होंने अपने पत्र में लिखा कि कलकत्ते के बाबू पूरणचन्द जी नाहर से आप को जटमल के विषय मे बहुत-सी बातें मालूम हो सकती है, क्योंकि जटमल उन्हीं के गोत्र का महाजन था। उन्होंने यह भी लिखा है कि आप के संग्रह मे उक्त ग्रन्थ की कई प्रतियां हैं, और यदि हम उन्हे देखना चाहे, तो आपने उदारता पूर्वक उन्हे हमारे पास भेजना स्वीकार किया है।

हम आप के अत्यन्त कृतज्ञ होंगे, यदि आप उक्त प्रतियां हमारे पास भेजने की कृपा करें। जटमल के सम्बन्ध मे तथा नाहर-वंश के तत्कालीन महत्व और अन्य महापुरुषो के सम्बन्ध मे भी आप जो बातें बतला सकते हों, उनको बतलाने की कृपा भी करें।

एक बात और। हिन्दी के विद्वानो मे प्रसिद्ध है कि जटमल का उक्त ग्रन्थ गद्य मे है, पर हमे अभी तक जो प्रतिया मिली है, वे सब पद्य में हैं, गद्य की एक पंक्ति भी उनमें नही। काशी के बाबू श्यामसुन्दर-दास जी लिखते हैं कि उन्होंने गद्य कथा देखी है, और उसकी कोई प्रति 'बंगाल एशियाटिक सोसायटी' के पुस्तकालय में है। यदि आप को विशेष कष्ट न हो, तो इस विषय का निश्चित पता लगाने का प्रयत्न करके हमें अनुगृहीत करें, और यदि सम्भव हो, तो गद्य-कापी की प्रतिलिपि भी भिजवा दें।"

मेरे पास जो कुछ साधन थे, मैंने उनको यथासमय लिख दिया था; परन्तु कार्यवश बंगाल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में जाकर वहा की प्रति को देखने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला। इस बीच पं० नरोत्तमदास जी और डा० राजसिंह जी, डाइरेक्टर आफ् एज्युकेशन, बीकानेर-स्टेट, कलकत्ते पधारे। उन्होंने बंगाल एशियाटिक-

टिक सोसायटी के पुस्तकालय में जाकर 'गोरा बादल की कथा' की प्रति तलाश की ; परन्तु उन्हें उसका कुछ पता न लगा। बाद में वे दोनों सज्जन मेरे पास आये और अपनी इस असफलता की बात सुनाई। उन्होंने कहा कि रायबहादुर श्यामसुन्दरदास जी की 'ऐनुयल रिपोर्ट आन् दि सर्च फार हिन्दी मैनुसक्रिप्ट फार दि इयर १९०१' के पृष्ठ ४५ में नं० ४८ पर 'गोरा बादल की कथा' की प्रति का संग्रहालय (प्लेस आफ् डिपोज़िट) 'एशायटिक सोसायटी आफ् बंगाल, कलकत्ता' लिखा है। खैर, दूसरे दिन दोनों सज्जनों को साथ लेकर मैं सोसायटी में पहुंचा और प्रति को ढूंढ़कर निकलवाया।

श्री श्यामसुन्दरदास जी ने रिपोर्ट में प्रति का इस प्रकार वर्णन किया है, और मेरी समझ में इस ग्रन्थ पर साहित्यिकों का भ्रम यहां से ही फैला—

आरम्भ—श्री रामजी प्रसन्न होये। श्रीगनेस साये नमः। लक्ष्मीकान्त। हैवाल कीसा चित्तौड़ गढ़ के गोरा वादल हुआ है जीन को वारता की कीताब हींदवी में बनाकर तैयार करी है॥

सुक सपत दायेक सकल सींद बुध सहेत गणेश
बीगण वीजर ला वोन सो घेलो भुज परणमेश॥ १॥

दूहा॥ जटमल वाणी सर सरस कहतां सरस वर चंद।
चहुवाण कुल उघधारो हुवा जुवा खावंद॥ २॥

समाप्ति—गोरेकी आवरत आवेसा वचन सुनकर आपने खावंदकी पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सीवपुर में जाके वाहा दोनों मेले हुवे॥ १४४॥ गोरा बादल की कथा गुरू के बस सरस्वती के महरवानगी से पुरन भई तीस वास्ते गुरु कू सरस्वती कू नमसकार करता हु॥ १४५॥ ये कथा सोलसे आसी के साल मे फागुन सुदी पुनम के रोज बनाई। ये कथा में दोर सेह वीरा रस व सीनगार रस है सो कथा॥ १४६॥ मोरछड़ो माव गाव का रहनेवाला कवेसर जगहा उस गांव के लोग भोहोत सुकी है घर-घर में आनन्द होता है कोई घर में फकीर दोषता नहीं॥ १४७॥

उस जग आलीषान खावा राज करता है मसीह खा का लड़का है सो सब पटानों में सरदार है जयेसे तारों में चन्द्रमा सरदार है आयेसा वोहे॥ १४८॥ धरमसी नायका वेतलीम का वेटा जटमल नाव कवेसर ने ये कथा सवल गांव में पुरण करी॥ १४९॥

विषय—मेवाण की महारानी पद्मावती की रक्षा मे गोरा और वादल की कीर्ति की कथा।

नोट—ग्रन्थकर्ता का नाम जटमल है, और उसने संवत् १६८० में यह ग्रन्थ वनाया।

सोसायटी की प्रति देखने पर मालूम हुआ कि वह हस्त-लिखित ग्रन्थ कालेज आफ् फोर्टविलियम के सरकारी संग्रह की हिन्दी-प्रतियों

से ले है। प्रति में वहां की छाप भी मौजूद है, और उसके प्रथम पत्र में उसका वर्णन अंगरेजी में इस प्रकार है—

"Sent by E. Wellesley Resident at Indore to Mr Atkinson Reed. June 2nd 1824.

Legend of the Padmavatee wife of the Ranah of Chittore including the attack on Chittoregurh by Allauddeen on her account, & the actions of Gorah & Badul in her defence.

The original version is in mixed Hindovee provincial Dialect as given in one column—the other column is a version in ordinary Hindovee."

इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि फोर्टविलियम कालेज के अधिकारियों ने जिस प्रकार पं० लल्लूलाल जी वगैरह से हिन्दी की नई पुस्तकें तैयार कराई थीं, उसी प्रकार शायद इन्दौर के रेज़िडण्ट वेलेस्ली साहब ने भी किसी से इस 'गोरा बादल की कथा' का हिन्दी अनुवाद कराकर अपने मित्र ऐटकिंसन साहब को भेजा था। यह प्रति सन् १८२४ की ८ जून को फोर्टविलियम कालेज में प्राप्त हुई थी।

अतः बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने हिन्दी की खोज की रिपोर्ट में इस ग्रन्थ को किस प्रकार गद्य-पद्यमय लिखा, समझ मे नहीं आता। शायद बाबू साहब ने इस प्रति का स्वयं निरीक्षण नही किया होगा, नही तो इतना भ्रम होना कदापि सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त सोसायटी की प्रति के आदि-अन्त के अंश भी जो उद्धृत किये गये हैं, वे भी अशुद्ध हैं।

सोसायटी की प्रति मे आदि-अन्त इस प्रकार है—

आदि—

मूल—सुक संपत दायेक सकल सीद बुद सहेत गनेसः वीगण वीजरण वीन सो पेलो तुज परणमेस ॥ १ ॥ दुहा। जटमल वाणी सरस रस कहता सरस वरवंद चहवाण कुल उधारो हुवा ज़ु वाचा वंद ॥ २ ॥ दुहा। गोरो रावत आत गुणी वादल आत वलवंत वोलीस घात वीहुणी साभल जो सव संत ॥ ३ ॥ दुहा। लड भीडने साको कीये वसुधा हुवा वीष्यांत चीत्रकुंट वाव कीये नेहे सुनो आवदात ॥ ४ ॥

अनुवाद—सुक संपत के देणवाले सव वातका सुक सव आकलके देणवाले आयेसे गणपत हे सो पेले तुम कु नमसकार करता हु ॥ १ ॥ आरथपेलो जटमल नावकवेसर के ते हे ये कथा वनाई हामारे वचन सच जु सेत हे ये कथा कयेसी हे के गोरा वादल दोनो काका भतीजा हुवे हे तीनो ने चुवाण कुल उधारया व लडभीड ने सां को कीये वचन के पालनेवाले हुवे ॥ २ ॥ गोरो वलवान वोहोत गुणी वादल माहा वलवान हे सो ये दोनो की वात मे केता हु आयेलो को तुम सुनो ॥ ३ ॥ गोरा वादलने पातस्याहा आलाउद्दीन से लडाई करके तमाम पोरथोमे नाव कीया चीतोड गड कु टाचा कीया सो उनोकी काहानी हाम केते हे ॥ ४ ॥ आरथ चवथा

अन्त—

मूल—दुहां। सोलसे आसी ये सम फागुण पुनम मास वीग रस सीणगार रस कह जटमल सुपरकास ॥ १४८ ॥ दुहां। वाने

प्रधान गद्य का गंगाभाट के पीछे सब से प्रथम रचयिता यही जटमल कवि है।

गोरा बादलकी कथा गुरु के बस सरस्वतीके महरबानगी से पूरन भई तिस वास्ते गुरू कू व सरस्वती कू नमस्कार करता हूं। ये कथा सोलसे आसी के साल मे फागुन सुदी पुनम के रोज बनाई। मोरछड़ो नाव गावका रहनेवाला कवेसर जगहा उस गाँवके लोग भोहोत (बहुत) सुकी है, घर-घरमे आनन्द होता है, कोई घरमे फकीर दीखता नहीं। धरमसी नाव का बेतलीन का बेटा जटमल नाव कवेसर ने ये कथा सबल गावमें पूरण करी।"

उक्त पुस्तक के द्वितीय भाग, पृ० ६१२-१३ नं० ११११७ से गद्य इतिहास के वर्णन मे ऐसा लिखा है—

"वर्तमान गद्य के जन्मदाता सदल मिश्र और लल्लूजी लाल माने जाते हैं। कुछ वैद्यक आदि की पुस्तकें भी लिखी गईं और कई ग्रन्थों की टीकायें भी ब्रजभाषा गद्यमे बनी, परन्तु पहले पहल गोरखनाथ ने गद्य-काव्य किया और फिर खड़ी बोली प्रधान गद्य मे पुस्तक रूप से गंगभाट ने काव्य किया और जटमलने सं० १६८० से गोरा बादल की लड़ाई लिखी। उसके पीछे सूरति मिश्रनें बैतालपचीसी का संस्कृत से ब्रजभाषा मे अनुवाद संवत् १७७० के लगभग किया। इनके प्रायः १०० वर्ष बाद इन्हीं दोनों महाशयोंने गद्यमे काव्यग्रन्थ लिखे और तभी से वर्तमान गद्य हिन्दी की जड दृढतासे स्थिर हुई।"

पश्चात् मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी-साहित्यका सक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किया, और उसके पृ० ३०, ३१ और ७८ मे भी इस गद्य अनुवाद के विषय मे उसी सिद्धान्त को पुष्ट किया, जो इस प्रकार है—

"जटमल खड़ी बोली गद्य का द्वितीय लेखक है। इसने गोरा बादल की कथा नामक ग्रन्थ मे उसी का प्राधान्य रखा है।

विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, गंगाभाट, बनारसीदास और जटमल ...

समयके गद्य-लेखक हैं। इस काल में भाषा में अनुप्रास यमकादि का विशेष आदर नहीं हुआ।

जटमल (संवत् १६८० वि०)

है बात की चीतौड़ गड़ को गोरा बादल हुआ है जीन की वार्ता की किताब हींदवी में बना कर तैयार करी है।

गोरे को भावरत आवे का वचन सुनकर आप ने षावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो शिवपुर में जाके वाहा दोनों मेले हुवे।

उस जग आलीषान बाबा राज करता है मसीह वाका लड़का है सो सब पठानों में सरदार है जयेसे तारों में चन्द्रमा सरदार है ओयसा वो है।"

फिर बाद में पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने भी उसी भ्रमपूर्ण धारणा से 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' के पृष्ठ ४७३ मे जटमल और उनकी रचनापर निम्न-लिखित बात लिखी है—

"संवत् १६८० में मेवाड़ के रहनेवाले जटमल ने गोरा बादल की जो कथा लिखी थी, वह कुछ राजस्थानीपन लिये खड़ी बोली में थी। भाषा का नमूना देखिये—

गोरा बादल की कथा गुरु के बस, सरस्वती के मैहरबानगी से, पूरन भई; तिस वास्ते गुरू कूं व सरस्वती कूं नमस्कार करता हूं। ये कथा सोल से असी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई। ये कथा में दो रस है—वीर रस व सिंगार रस है, सो कथा मोरछड़ो नावं गांव का रहनेवाला कवेसर। उस गांव के लोग भोहोत सुखी है। घर-घर में आनंद होता है, कोई घर मे फकीर दीखता नहीं।

इन दोनों अवतरणों से स्पष्ट पता लगता है कि अकबर और जहाँगीर के समय मे ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी। यह भाषा उर्दू नहीं

कही जा सकती, इसमें 'नमस्कार', 'सुखी' 'आनंद', 'वीररस' आदि संस्कृत शब्द उसी प्रकार आये हैं, जिस प्रकार आजकल आते हैं। यह हिन्दी खड़ी बोली है।"

कवि जटमल ने मेवाड़ की रानी पद्मावती की कथा लिखी, इसलिए शुक्लजी ने उनको मेवाड़ का रहनेवाला बताया है। यह ठीक नहीं है, क्योंकि वे लाहोरके निकटवर्ती ग्रामके रहनेवाले थे। शुक्लजी ने इस वर्णन में खड़ी बोली के शब्दोंपर जो कुछ विवेचन किया है, उसपर यहाँ कुछ कहना अनावश्यक है।

फिर रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक एक विशाल ग्रन्थ प्रकाशित किया। उस पुस्तक के पृ० ४१० पर भी इसी भ्रमवश उन्होंने जटमल को गद्य-लेखक माना है। परन्तु जहाँ तक मेरा ख़याल है, कवि जटमलने गद्य मे एक भी रचना नहीं की।

इन लेखकों के बाद पं० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' एम० ए० का भी सन् १९३१ मे 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थमे भी उन्हों ने गोरा बादल की कथापर भ्रमवश जो टिप्पणी लिखी है, उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"गोरा बादल की कथा—खड़ी बोली को प्राधान्य देते हुए सं० १६८० मे जटमल कविने इसे गद्य मे लिखा। गंगके बाद यही कवि खड़ी बोली गद्य का द्वितीय प्रधान लेखक कहा गया है। इसकी भाषा बहुत कुछ ब्रजभाषासे प्रभावित है। कारकादि के रूप तो खड़ी बोली के रूपों से मिलते हैं, किन्तु क्रियाओं के रूप ब्रजभाषाकी ओर झुकते है।"

पं० बद्रीनाथ भट्ट बी० ए०, हिन्दी-अध्यापक, लखनऊ-विश्वविद्यालय ने हिन्दी की उत्पत्ति और हिन्दीसाहित्यके विकासपर 'हिन्दी' नामक पुस्तक लिखी है, जिसकी तृतीयावृत्तिके पृ० २५-२६ पर इस प्रकार है—

"जटमल ने संवत् १६८० में जो 'गोरा बादल की कथा' लिखी है उसमें 'हिंदवी' शब्द लिखा है। इन सब बातोंसे सूचित होता है कि इस समय तक हिन्दीके अरबी फारसी मिश्रित रूपका नाम 'उर्दू' नहीं पड़ा था।"

परन्तु वास्तवमें जटमल ने अपने काव्य में 'हिंदवी' ऐसा कोई शब्द ही नहीं लिखा है। फिर पृ० ७८ पर भट्टजी ने भी वही वर्णन किया है—

"जटमल ने 'गोरा बादल की कथा' गद्य में लिखी। इसकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली नहीं है, यद्यपि चेष्टा उसी में लिखने की की गई है।"

मुझे आशा है कि अध्यापक नरोत्तमदासजी अपने सुसम्पादित संस्करण को प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्यके इतिहास के इस भ्रमको दूर करेंगे, तथा और भी विद्वान्गण इस काव्यकी प्रतियो की खोजकर कवि जटमल की अन्य कृतियोंको प्रकाशित करेंगे।

रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी की रिपोर्ट में तथा बाद में प्रकाशित हिन्दी-भाषा के इतिहासों में 'गोरा बादल की कथा' के मूल और अनुवाद के पाठ में भी स्थान-स्थान मे वही भ्रम चला आता है। सोसायटी की प्रति एवं बीकानेर और जोधपुरकी प्रतियों की नकल और अपनी प्रतिके निरीक्षण से जो शंकाएं उठती हैं, उनमें मुख्य यह हैं—

रचनाकाल

बीकानेर की प्रति मे काव्य का रचनाकाल संवत् १६८६ है—

'संवत सोलह सै छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादसी तिथि वार के दिन करी धरि उलास।'

सोसायटी की प्रति में रचनाकाल सं० १६८० है—

'सोलसे आसीये सम फागुण पुनम ,मास।
वीरा रस सीणगार रस कहूं जटमल सुप्रकास।'

जोधपुरकी प्रति मे तथा मेरी प्रति में रचनाकाल के समय का कोई उल्लेख नही है। बीकानेर की प्रति का लिखन संवत १७५२ है, यानी इन चारों में सब से पुरानी है। मेरी प्रति संवत् १७८० की लिखी हुई है। ऐसी दशा मे इस काव्य की और भी प्रतियां को मिलाकर इसके रचनाकालका ठीक पता लगाना चाहिए।

ग्रन्थकर्ता

कवि जटमल का नाहर गोत्रीय होने के विषयमे सोसायटी की प्रति के सिवा और तीनो प्रतियोमे इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है:—

सोसायटी की प्रति में—

'धरम सीहि को नंदन जटमल वाको नाव।
जीण कही कथ बनाये के बीच सवलके गाव।'

बीकानेर की प्रति में—

'धरमसी को नंद नाहर जाति जटमल नाउं।
तिन करी कथा बनाय के विचि सुबला के गांम।'

जोधपुर की प्रति में—

'धरमसी को नंद नाहर खांप जटमल नाम।
जिण कही कथा वणाय कै वीचि लु बुलाके गांम।'

मेरी प्रति में—

'धर्म्मसी को नंदन नाहर जाति जटमल नाम।
जिण कही कथा वनाय वै विच सिंबुला के गांम।'

यद्यपि सोसायटी की प्रति में ग्रन्थकर्ता के गोत्र का उल्लेख नही है तथापि जब और तीनो प्रतियो में उनका गोत्र पाया जाता है, तो इस में शंका न ... ...

निवास-स्थान

सोसायटी की प्रति में ग्रन्थकर्ता का वासस्थान जो 'मोरछड़ो' लिखा है, वह भी अशुद्ध प्रतीत होता है।

सोसायटी की प्रति में—

'वासे मोरछड़ो आवल सुषी रहैयेत लोक।
हानद उठ वोहोत घर घर दोषवत नहीं सोग।'

परन्तु बीकानेर की प्रति में—

'अव वसइ सुह छ अडोल अविचल सुखी रहैयत लोक।
आणंद घरि २ होय मंगल देखीयै नहीं सोक।'

जोधपुर की प्रति में—

'वसै सोस अडोल अविचल सुखी रहैयत लोग।
आनंद उच्छव होत घरि घरि देषीयत नहि सोग।'

मेरी प्रति में—

'वसै मोच अडोल अविचल लुष रहैयत लोग।
आनंद उच्छव होत घरि घरि देषीयत नहि सोग।'

मंगलाचरण

मंगलाचरण के पदों में भी प्रतियों में अन्तर है।

सोसायटी की प्रति में—

'सुक संपत दायेक सकल सींद बुद सेहत गनेस।
वीगण वीजरण वीन सो पेलो तुज परणमेस।१।'

बीकानेर की प्रति में—

'चरण कमल चितु लाय। समरूं श्री श्री सारदा।
सुहमति दे मुझ माय। करूं कथा तुंहि ध्याइ कै।१।'

जोधपुर की प्रति में—

> 'करके दीजै मो कृपा, पावन सुमत गणेस।
> विघन विडारण सुखकरण, जय जय सुतन महेस।१।'

मेरी प्रति में—

> 'सु (ख संपति) दायक सकल। सिद्धि बुद्धि सहित गणेश।
> विघन विडारण विनय सौं। पहिलौ तुझ प्रणमेश। १।'

इन सब विषयों के अतिरिक्त प्रतियों के पाठान्तर आदिपर भी विवेचन करनेकी आवश्यकता है, परन्तु इस प्रबन्ध का कलेवर बढ़ाना अनुचित समझकर इसको यहां समाप्त करता हूं।

'विशाल भारत' वर्ष १२ अंक ६, दिसम्बर, १९३४, पृ० ७२६-७३५

धार्मिक-उदारता

संसार में धर्म्म ही एक ऐसी वस्तु है कि जिसकी सृष्टि सब धर्म्मवाले अलौकिक बताते हैं। कोई इसको अनादि कहते हैं, कोई स्वयं ईश्वर का वचन अथवा कोई ईश्वरतुल्य अवतार के कहे हुए उपदेश और नियमादि के पालन को ही धर्म्म कहते हैं। चतुर्दश रज्ज्वात्मक जीवलोक मे जितने भी जीव हैं सुखप्राप्ति के लिये सब लालायित रहते हैं। जीव की मुक्ति अर्थात् निर्व्वाण के अतिरिक्त जितने प्रकार के सुख हैं सब सामयिक तथा निर्दिष्टकाल और परिमाण के होते हैं। 'धर्म्म' शब्द के अर्थ को देखिये तो यही ज्ञात होगा कि यह ऐसी वस्तु है कि जो जीव को दुःख मे पड़ते हुए से बचावे। जो अपने को कष्ट से बचावे और सुख की प्राप्ति करावे ऐसी वस्तु को कौन नहीं चाहता? सारांश यह है कि किसी न किसी प्रकार का 'धर्म्म' मनुष्यमात्र को चाहिये। चाहे उनका धर्म्म सनातन हो, चाहे जैन, चाहे बौद्ध, चाहे ईसाई हो, चाहे वे मुसलमान हों, चाहे नास्तिक हों, उनको किसी न किसी धर्म्म की अथवा किसी महापुरुष के चलाये हुए मत की दुहाई देनी पड़ती है। जिस प्रकार समाज मे चाहे वह गरीब हो चाहे सेठ साहूकार अथवा राजा महाराजा हो सामाजिक दृष्टि से सभो का दर्जा एक है, उनमें कोई बड़ा छोटा नहीं समझा जाता उसी प्रकार धार्मिक दृष्टि से भी—एक ही धर्म के पालनेवाले सबलोगों की गणना एक ही श्रेणी में होती है। परन्तु अपने अपने धर्म्मवाले उनको धार्मिक दृष्टिकोण से दूसरे धर्म्मा-नुयायियों को घृणा के भाव से देखते हैं। इतिहास कहता है कि

धर्म्म के नाम पर मुसलमान लोगों ने कई बार संग्राम छेड़ दिया था। मैं कुरान शरीफ से परिचित नहीं हूं परन्तु सम्भव है उनके धर्म्म-प्रवर्त्तक महम्मद साहब का ऐसा उपदेश न होगा। दूसरों के धर्म्मका नाश करके अपने धर्म्म का प्रचार करना दूसरी बात है, परन्तु मनुष्य होकर इस प्रकार दूसरे मनुष्यको कष्ट पहुंचाना धर्म्म नहीं हो सकता। अपने धर्म्मानुयायियों की संख्या-वृद्धि करने को धर्म्म समझना स्वाभाविक है, परन्तु वे लोग इस विचार को कार्य्यरूप में लाने के समय सीमा के बाहर जाते थे। जैन धर्म्म के तत्व में अन्य धर्म्म को अथवा अन्य धर्म्मावलम्बियों को 'न निंदिज्जई न वँदिज्जई' यहाँ तक कि निन्दा करना मना है। धार्म्मिक विषयों में ऐसी उदारता अवश्य होनी चाहिये। हमारे तीर्थंकर जातिनिर्व्विशेष से उपदेश दिया करते थे। जैनियोंके धर्म्मग्रन्थ से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों के 'समवसरण' में अर्थात् जिस स्थान से तीर्थंकर धर्म्मोपदेश देते थे वहां पर सब जीवोंका—पशुपक्षियों तक का भी स्थान रहता था और देवता से लेकर तिर्यंच तक सब प्रकार के प्राणी अपनी अपनी भाषा में भगवान का उपदेश समझ लेते थे। इस अलौकिक शक्ति को तीर्थंकरों का 'अतिशय' बताया गया है।

जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी को हुए आज २५ शताब्दी हो चली तो भी जैनियों में वही उदारता देखने में आती है। इधर कई शताब्दी तक मुसलमान सम्राटगण भारत के शासक रहे। यहाँ के निवासियों से उनलोगों का राजा प्रजा का सम्बन्ध हुआ था। वे लोग हिन्दू धर्म्मावलम्बियों को समय समय पर उत्पीड़ित करते रहे। देखिये—हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थस्थान 'सोमनाथ' जो भारत के सुदूर सौराष्ट्र प्रांत में है वहाँ महम्मद गजनी ने जिस प्रकार मूर्त्ति को नष्ट किया था वह कथा भारत के समस्त इतिहास की पुस्तकों में वर्णित है। शताब्दियों तक अत्याचार होता रहा और यही रही लगभग १७ वीं शताब्दी में 'काला पहाड़' ने विहार और बंगप्रान्त

के सब हिन्दू, बौद्ध देवता और देवियों की मूर्त्तियां तोड़ दी थीं। परन्तु धार्म्मिक उदारता के कारण जैनियों पर कोई विशेष अत्याचार का उल्लेख नहीं मिलता। मुझे कुछ समय पूर्व तीर्थ-राजगृह के पंच पहाड़ों में से पहिले विपुलाचल के श्रीपार्श्वनाथ मंदिर की विशाल प्रशस्ति मिली थी। यह संस्कृत भाषा मे गद्य-पद्यमय है और इसका समय विक्रम संवत् १४१२ अर्थात् १५ वीं शताब्दी है। उस समय सम्राट् फिरोज़ शाह राज्य करते थे। उक्त प्रशस्ति में उल्लेख है कि मुसलमानगण भी जैनियोंके धार्म्मिक कार्य्य मे सहायता देते थे। प्रशस्ति के आदि और अन्त के कुछ आवश्यक अंश यहा उद्धृत किये जाते हैं :—

"ॐ नमः श्रीपार्श्वनाथाय। श्रेयः श्रीविपुलाचलामरगिरिस्थैयः। स्थितिस्वीकृतिः। पद्मश्रेणिरमाभिरामभुजगाधीशस्फटासंस्थितिः॥ पादासीनदिवस्पतिः शुभफलश्रीकीर्त्तिपुष्पो दामः। श्रीसंघाय ददातु वांछितफलं श्रीपार्श्वकल्पद्रुमः॥ १॥···श्रीराजगृहमहातीर्थे। गजेंद्राकारमहापोतप्राकारश्रीविपुलगिरिविपुलचूलापीठे सकलमहीपालचक्रचूलामाणिक्यमरीचिमंजरीपिंजरितचरणसरोजे। सुरत्राणश्रीसाहिपेरोजे महीमनुशासति। तदीयनियोगान्मगधेषु मलिकवयो नाम मडलेश्वरसमये। तदीयसेवकसहणसदुरदीनसाहाय्येन ········ इति विक्रम संवत् १४१२ आषाढ़ वदि ६ दिने। श्रीखरतरगच्छशृङ्गारसुगुरुश्रीजिनलब्धिसूरिपट्टालंकारश्रीजिनचंद्रसूरिणामुपदेशेन। ····· ···ठ० वच्छराज ठ० देवराज सुश्रावकाभ्यां कारितः·····श्रीपार्श्वनाथ प्रासादस्य प्रशस्तिः॥"

भावार्थ यह है कि सुलतान फिरोजशाह ने मलिकवय को मगध प्रदेश का सूबा अर्थात् शासक नियुक्त किया था। उन्हा के कार्यकर्त्ता शाह नासिरुद्दीन की सहायता से मगधदेश स्थित राजगृह तीर्थ के विपुलगिरि पर आचार्य श्रीजिनचन्द्र सूरि के उपदेश से

वच्छराज देवराज ने श्रीपार्श्वनाथ का मंदिर सं० १४१२ आषाढ़ वदी ६ को बनवाया।

सम्राट् अकबर की धार्म्मिक उदारता प्रसिद्ध है। जहाँगीर, शाहजहाँ आदि बादशाहों के समय में भी जैनियों को धार्म्मिक विषयों में सहायता मिली थी। उनके पवित्र तीर्थक्षेत्रों के संरक्षण के लिये समय समय पर गुजरात, मालवा, बंगाल आदि प्रान्त के सूबों में लोगों से फरमाण आदि भी प्राप्त किये थे।

जैनियों में श्वेताम्बर और दिगम्बर दो मुख्य सम्प्रदाय हैं। मैं दिगम्बर-साहित्य से विशेष परिचित नहीं हूं। श्वेताम्बर-साहित्य के इतिहास को मैंने जहां तक अवलोकन किया है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर आचार्य और विद्वानों ने प्राचीन काल से अजैन विद्वानों की कृतियों को निःसंकोच से अपनाया था। उनका अभ्यास करते थे, उन पर पाण्डित्यपूर्ण टीकायें रची हैं, उनके साहित्य को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। यही धार्म्मिक उदारता है।

जैनियों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सिद्धसेन दिवाकर,* उमास्वति वाचक* हरिभद्र अभयदेव से लेकर हेमचन्द्राचार्य आदि तथा दिगम्बर सम्प्रदाय में कुंदकुंदाचार्य, समंतभद्र, अकलंकदेव, प्रभाचंद्र, विद्यानंदि, जिनसेन आदि बड़े बड़े प्रख्यात विद्वान हो गये हैं जिनकी कृतियों की पाश्चात्य विद्वानगण भी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। परन्तु सनातन-धर्म्मावलम्बी-पण्डितों ने उन्हें कहीं अपनाया हो ऐसा देखने में नहीं आता यहाँ तक कि वे महत्वपूर्ण जैनग्रन्थों के नामोल्लेख करने में भी हिचकते थे। यह अनुदार भाव उन लोगों की धार्म्मिक

---

* ये तथा आगे के भी दो एक आचार्य दिगम्बर-सम्प्रदाय में भी मान्य हैं—सम्पादक।

संकीर्णता है। * अजैन विद्वानों के नाना विषय के ग्रन्थों को श्वेताम्बर लोगों ने किस प्रकार अपनाया है इसका कुछ दृष्टांत मैं यहां उपस्थित करूंगा। आशा है कि दिगम्बर विद्वानगण भी इस प्रकार धार्म्मिक उदारता को प्रकाशित करेंगे।

हाल ही में अमेरिका के पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक डा० नरमैन ब्राउन साहब ने 'कालिकाचार्य कथा'† नामक अङ्ग्रेजी में पुस्तक प्रकाशित की है, जिसकी भूमिका पृ० ४ में जैनाचार्यों के विषय में इस प्रकार लिखते हैं :—

"It is perhaps permissible to record here my appreciation not merely of the courtesy and scholarship of Jain monks and laymen but also of their lofty ideals and noble lives. They are of the greatness that is India. There is a spirit of helpfulness, tolerence and sacrifice coupled with their intelligence and religious devotion that marks them as one of the world's choice communities."

अर्थात् "जैन साधुओं और गृहस्थ जनों के शिष्टाचार और विद्वता के साथ साथ उनके ऊंचे आदर्श और उत्कृष्ट जीवन का यहां उल्लेख

---

* प्रबन्ध प्रकाशित होने के पश्चात् मैसूर के प्रसिद्ध विद्वान् डा० ए०, वेंकाटा सुवेया महोदय ने सूचित किया है कि कर्णाटक देश के सनातन विद्वान गण जैन साहित्य को उदारता से अपनाये हैं।

लेखक—

(†) 'The Story of Kalaka' by W. Norman Brown, Prof. of Sans. in the University of Pennsylvania, Washington U. S. A. 1933, Preface p. IV.

कर देना शायद् उचित होगा। उनके बड़प्पन से भारत गौरवान्वित है। उन में सहायता, सहनशीलता और त्याग की शक्ति है। उनकी शुद्धि और धार्म्मिक लवलीनता इन सब गुणों के साथ मिलकर इन्हें संसार के आदर्श सम्प्रदायों में से एक प्रमाणित करती है।"

यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारत के किन्हों भी धर्म्मावलम्बियो मे जैनियों की तरह धार्म्मिक उदारता नहीं पाई जाती है। यदि अजैन विद्वानगण अपने २ साहित्य से ऐसे २ दृष्टांत प्रकाशित कर सकें तो मेरा यह भ्रम दूर हो जाय। अजैन साहित्य के नाना ग्रन्थों पर जैन लोगों ने किस प्रकार टीका, वृत्ति आदि की रचना की हैं यह निम्न-लिखित तालिका से पाठकों को विदित होगा। यहाँ तक कि हिन्दीग्रन्थ पर भी जैनाचार्यों ने कई टीकायें रच डाली हैं।

जैनविद्वानों ने सिद्धान्त के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष, अलंकार, नीति, ज्योतिष आदि नाना विषयों पर अच्छे २ ग्रन्थ रचे हैं। केवल हेमचन्द्राचार्य के ही अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। इनके पूर्व सिद्धर्षि आचार्यने 'उपमिति-भव-प्रपंच-कथा' नामक ग्रन्थ लिखा था जो की साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इस लेख में इन सबों का उल्लेख करना अनावश्यक है। इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि श्रीमहावीर स्वामी के पश्चात् आज लगभग पच्चीस शताब्दी तक जैन लोग धार्म्मिक उदारताके साथ साहित्य की सेवा बजा रहे हैं। जैनाचार्यगण महत्वपूर्ण अजैन ग्रन्थों के नाम लेकर स्वयं अच्छे अच्छे काव्य रचे हैं। ११ वीं शताब्दी में श्रीजिनेश्वर सूरिने "जैननैषधीय" नामका एक सुन्दर काव्य की रचना की थी। श्रीजयशेखर सूरिने "जैन-कुमार-संभव" लिखा है जो उनकी विद्वत्ता प्रकट करती है। "जैनमेघदूत" की रचना भी प्रशंसनीय है। भारतवर्ष के अन्य विद्वानो मे कहीं भी इस प्रकार की उदारता का दृष्टान्त नहीं मिलेगा।

अजैन ग्रन्थोंपर श्वेताम्बर जैन विद्वानोंकी टीका —

व्याकरण

कातन्त्र-सूत्र[*] (कलाप) — वर्द्धमान सूरिकृत 'कातंत्र विस्तार'। सोमकीर्ति सूरिकृत 'कातंत्र पंजिका' वृत्ति। जिनप्रभ सूरिकृत 'कातंत्र-विभ्रम' वृत्ति। चारित्रसिंहकृत 'कातन्त्रविभ्रमावचूरि'। मेरुतुंगसूरिकृत 'बालावबोध' वृत्ति। विजयनन्दनकृत 'कातंत्रता'। दुर्गसिंहकृत वृत्ति। पृथ्वीचंद्र सूरिकृत 'दौर्गसिंह' वृत्ति। मुनिशेखरकृत वृत्ति। प्रबोध मूर्तिकृत 'दुर्गपदप्रबोध' वृत्ति। मुनिचंद्र सूरिकृत वृत्ति। गौतम कृत 'कातन्त्रदीपिका'। विजयानंदकृत 'कातंत्रोत्तर'।

पाणिनि — रामचंद्रर्षिकृत 'धातुपाठ' टीका।

सिद्धांतचन्द्रिका — सदानंदकृत 'सुबोधिनी' टीका।

मुग्धबोध — कुलमंडनकृत 'मुग्धावबोध औक्तिक'।

काशिकान्यास — जिनेंद्रबुद्धिकृत।

कविकल्पद्रुम — विजयविमलकृत अवचूरि।

सारस्वत — सहजकीर्त्तिकृत वृत्ति। भानुचन्द्रकृत टीका। दयारत्नकृत वृत्ति। मेघरत्नकृत 'ढुंढिका' वृत्ति। यतीशकृत 'सारस्वतदीपिका' वृत्ति। चन्द्रकीर्तिकृत वृत्ति। नयसुन्दर कृत टीका। श्रा० मंडनकृत सारस्वत-मण्डन टीका।

वाक्यप्रकाश — उदयधर्म्मकृत टीका। हर्षकुलकृत टीका। रत्नसूरि कृत टीका।

अनिट् कारिका — क्षमामाणिक्य कृत अवचूरि। हर्षकीर्त्तिकृत वृत्ति।

---

[*] इसी कातन्त्र सूत्र पर दिगम्बराचार्य भावसेन त्रैविद्यदेव कृत भी "कातन्त्ररूपमाला" नाम की एक प्रशस्त वृत्ति है। बल्कि कई विद्वान् कातन्त्रसूत्र के रचयिता शर्ववर्मा को जैन मानते हैं। [सं०]

'शब्दप्रभेद'— ज्ञानविमलकृत 'शब्दभेदप्रकाश' वृत्ति।
(महेश्वर कवि रचित)

अलंकार

वृत्तरत्नाकर— सोमचन्द्रसूरिकृत टीका। हर्षकीर्त्तिकृत टीका। समयसुन्दरकृत टीका।

श्रुतबोध— हर्षराजकृत टीका। हर्षकीर्त्तिकृत टीका।

छन्दः शास्त्र— वर्द्धमान सूरिकृत टीका। श्रीचन्द्र सूरिकृत टीका। पद्मप्रभसूरिकृत टीका।

पगलसार— विवेककीर्त्तिकृत टीका।

काव्यालंकार— नमिसाधुकृत टीका।

काव्यप्रकाश— यशोविजयकृत टीका। माणिक्यचन्द्रकृत 'काव्यप्रकाश-संकेत'।

गाथासप्तशती—भुवनपालकृत वृत्ति।

विदग्धमुखमंडन-शिवचन्द्रकृत टीका। जिनप्रभसूरिकृत चूर्णि।

काव्य

कादम्बरी— सूरचन्द्रकृत टीका। मदनमन्त्रिकृत 'कादम्बरीदर्पण' टीका। भानुचन्द्रकृत टीका (पूर्व खंड) सिद्धिचन्द्र कृत टीका (उत्तर खंड)

भट्टी काव्य— कुमुदानंदकृत "सुबोधिनी" टीका।

रघुवंश— चारित्रवर्द्धनकृत 'शिशुहितैषिणी' टीका। धर्म्मसेरुकृत 'सुबोधिनी' टीका। सुमतिविजयकृत 'सुगमान्वया' टीका। समुद्रसूरिकृत टीका। रत्नचन्द्रकृत टीका। विजयगणिकृत टीका। समयसुन्दरकृत टीका। गुणविजयकृत टीका।

कुमार संभव— विजयगणिकृत वृत्ति। लक्ष्मीवल्लभकृत टीका। चारित्रवर्द्धनकृत 'शिशु हितैषिणी' टीका। मुनिमतिरत्नकृत 'अवचूरि'। जिनभद्रसूरि कृत 'बालबोधिनी' टीका।

मेघदूत — क्षेमहंसकृत वृत्ति। महीमेरुकृत 'बालावबोध' टीका। सुमतिविजय कृत 'अवचूरि'। मेरुतुंगसूरिकृत वृत्ति। महिमसिंहकृत टीका। आसड़कृत टीका।

नैषध— जिनराजसूरिकृत टीका। श्रीनाथसूरिकृत 'नैषधप्रकाश' टीका। चारित्रवर्द्धनकृत टीका।

किरातार्ज्जुनीय-विनयसुन्दरकृत वृत्ति। धर्म्मविजयकृत 'दीपिका' टीका।

शिशुपालवध— वल्लभदेवकृत टीका। चारित्रवर्द्धनकृत टीका।

नलोदय— आदित्यसूरिकृत टीका।

वासवदत्ता— सिद्धिचन्द्रकृत वृत्ति। सर्वचन्द्रकृत वृत्ति। नरसिंहसेनकृत टीका।

राघवपांडवीय—पद्मनंदीकृत टीका। पुष्पदन्तकृत टीका। चारित्तवर्द्धनकृत टीका।

खंडप्रशस्ति— गुणविनयकृत 'सुबोधिका' वृत्ति। जयसोमगणिकृत टीका। विजयगणिकृत टीका।

कर्पूरमंजरी— प्रेमराजकृत लघु टीका। राजशेखरकृत टीका। धर्म्मचन्द्रकृत वृत्ति।

भर्तृहरिशतक—धनसारसाधुकृत टीका। जिनसमुद्रसूरिकृत टीका। रूपचन्द्रकृत टूवार्थ।

अमरुशतक— रूपचन्द्रकृत टूवार्थ

षट् पंचाशिका—उ० महिमोदयकृत 'बालावबोध' टीका

जगदाभरणकाव्य—ज्ञानप्रमोदकृत टीका

घटकर्परकाव्य शांतिसूरिकृत टीका

वृन्दावनकाव्य ,,

शिवभद्रकाव्य ,,

राक्षसकाव्य ,,

नाटक

अनर्घराघव— जिनहर्षकृत वृत्ति। नरचन्द्रकृत टिप्पण। देवप्रभकृत 'रहस्यादर्श' टीका।

प्रबोधचन्द्रोदय—रत्नशेखरकृत वृत्ति। जिनहर्षकृत वृत्ति। कामदासकृत वृत्ति।

राघवाभ्युदय— रामचन्द्रकृत टीका।

दमयन्ती-चम्पू— प्रबोधमाणिक्यकृत टिप्पण। चंडपालकृत टीका।

नलचम्पू— गुणविजयगणिकृत टीका।

न्याय

तर्कभाषा— शुभविजय कृत वार्त्तिक।

तर्कफक्किका— क्षमाकल्याणकृत टीका।

तर्करहस्यदीपिका—गुणरत्नसूरिकृत।

न्यायावंदली— नरचन्द्रसूरिकृत टीका। राजशेखरसूरिकृत पंजिका। रत्नशेखरसूरिकृत टीका।

न्यायप्रवेश— हरिभद्रसूरिकृत टीका

न्यायसार— जयसिंहसूरिकृत टीका

न्यायलंकार— अभयतिलककृत वृत्ति

न्यायबोधिनी—नेतृसिंहकृत टीका

पातांजलयोगदर्शन—यशोविजयकृत टीका

योगमाला— गुणाकरकृत लघुवृत्ति

ज्योतिष

जातक— हर्षविजयकृत 'जातकदीपिका' वृत्ति

लघुजातक— मतिसागरकृत 'बालावबोध' वचनिका

ताजिकसार— सुमतिहर्षकृत वृत्ति

वसन्तराजशकुन—भानुचन्द्रकृत टीका

स्वप्नसप्ततिका—सर्वदेवसूरिकृत वृत्ति

महाविद्या— भुवनसुन्दरकृत वृत्ति

मंत्रशास्त्र— मल्लिषेण-कृत टीका

मंत्रराजरहस्य—सिंहतिलकसूरिकृत टीका

योनिप्राभृत— हरिषेणकृत टीका

योगरत्नाकर— नयशेखरकृतटीका

वैद्यक

योगरत्नमाला—गुणाकरकृत टीका

रसचिन्तामणि—अनंतदेवसूरिकृत टीका

वैद्यकसारसंग्रह—हर्षकीर्त्तिकृत टीका

वैद्यकसारोद्धार—हर्षकीर्त्तिकृत टीका

वैद्यकवल्लभ— हस्तिरुचिगणिकृत टीका

योगचिन्तामणि—हर्षकीर्त्तिकृत टीका

ज्वराष्टक— मल्लदेवकृत टीका

सन्निपात-कलिका—हेमनिधानकृत टीका

लक्षण संग्रह— रत्नशेखरकृत टीका

भाषा

विहारी-सतसई—समरथकविकृत टीका

रसिकप्रिया— कुशलधीरकृत 'रसिक-प्रिया विवरण'

पृथ्वीराजवेली—कविसारंगकृत संस्कृत टीका। कुशलधीरकृत टीका। शिवनिधानकृत टीका। श्रीसारकृत टीका। जयकीर्त्तिकृत टीका। राजसोमकृत टीका।

'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' भाग २, किरण १, (जून १९३५), पृ० ३२—४१। जैन सिद्धान्त भवन आरासे प्रकाशित।

धार्मिक हिसाब तपासणी खाता।

मान्यवर प्रमुख साहब.

समागत प्रतिनिधियों, समस्त सहधर्मी बन्धुओं:—

"श्रेयः श्री विपुलाचलामरगिरि स्थेयः स्थिति स्वीकृतिः।
पत्रश्रेणिरमाभिराम भुजगाधीश स्फटा सस्थितिः॥
पादासीन दिवस्पति शुभफलं श्रीकीर्त्तिपुष्पोद्गमः।
श्री संघाय ददातु वांछितफलं श्रीपाश्र्वकल्पद्रुमः॥ १॥"

मैं आज अंगरेजी संवत्सर के शुभदिन को मांगलिक प्रार्थना करता हुआ श्री चतुर्विधसंघ को नमस्कार करके जो प्रस्ताव अनु-मोदन करने के लिये आप साहवोंके सम्मुख उपस्थित हुआ हूं, अपनी कान्फ्रेन्स की वहुत से प्रवन्धो मे यह भी एक अत्यावश्यकीय विषय है इसमे संदेह नहीं। अपनी कान्फ्रेंस ने इसको ध्यान में लेकर कई वर्षोंसे जो कुछ कार्य किया है, उसका हाल आप लोगों को अनररी अडिटर साहब की रिपोर्टसे ज्ञात हुये हैं और उसको सर्टिफाण्ड एकाउटेंट मि० हीराचन्द लीलाधर जवेरीने अच्छी तरहसे विवेचन किया है। इस प्रस्तावमे विचारने योग्य वहुतसी वातें हैं, परन्तु समय संक्षेप है तौ भी २।१ वात कहने को इच्छा रखता हूं, आप लोग ध्यान दीजिये। जैसे अपने शरीर की रक्षा के लिये दाल रोटी की जरूरत है उसी प्रकार अपनी आत्मा के कल्याण के लिये धार्मिक व्यवस्था की भी आवश्यकता है। इस कारण परंपरासे महानुभाव सज्जन पुरुष लोग मंदिर, उपासरा, ज्ञानभंडार, धर्मशाला, नोकारसी

आदि नाना प्रकार धर्म और सत्कार्य के लिये अर्थ दे गये हैं और उस फंडमे अभीतक आमदनी होती है। ऐसे ऐसे कार्यों से समस्त श्रीसंघ लाभ उठा रहे हैं। जहां जहां जैन भाई लोग वसते हैं वहा वहां ऐसे धर्मादे फंडकी कमी नहीं है, खास कर इसे यह पूर्व देश में तीर्थ स्थानो की संख्या अधिक होने के कारण वहुत से धर्मादे फण्ड वर्तमान हैं। परन्तु वहुतसे फण्डों के हिसाव की रिपोर्ट प्रकाशित होते देखी नहीं गई।

वहुत से स्थान ऐसे हैं कि जहां कई कारणों से धर्मादे फण्ड की व्यवस्था ठीक नहीं है। यदि वहां की तपासणी की जाय और जो २ त्रुटियाँ दीख पड़े उसके सुधार की व्यवस्था हो जाय तो आमदनी वृद्धि होने की आशा है और दिन २ धर्मादे फण्ड की अवश्य उन्नति होगी।

वहुत से स्थानों में ऐसा भी देखने में आता है कि सर्व प्रकार के साधन रहते भी किसी तुच्छ कारण से श्रीसंघ में मतभेद होकर व्यवस्था में गडवड़ चल रहा है। वहां पर ऐसे कारणो को शोध कर के सव श्रीसंघ को समझा कर उनको एक मत कर के सुधार किया जाय तो वहुत ही लाभ हो सक्ता है और भविष्यत् मे अधिक हानि का कारण भी दूर हो जा सकता है। धर्मादेकी रकम का हिसाव तो जहां तक वने साफ रहना ही उचित है, और जहां अच्छी दशा में रहती है, वहां पर उस धर्मादे फण्ड के उद्देश्य की भी अच्छी-तरह सफलता प्राप्त होती है और कार्य वाहकों को भी अधिक उत्साह रहा करता है। जहा गड़वड़ रहता है वहां जो मुख्य २ कारण होते हैं, वह यह है कि प्रथम तो धार्मिक फण्ड द्रव्यवान शेठ साहुकारो के हाथ में रहता है उन लोगो को अपने २ कामो से ही अवकाश नहीं मिलता तो धर्मादे का कार्य कौन संभाले ? उनके गुमास्तों के हाथमे विलकुल छोड़ा हुआ रहता है जो यदि भाग्यवश विश्वासी मिल गये तो ठीक है नहीं तो लिखे भी रकम मे ही गड़वड़ हो जाता है।

और मान लिया जाय कि रकम ठीक है परन्तु गुमास्ते लोग खास काम के योग्य न हों तो ठीक व्यवस्था होना असम्भव है। ऐसी जगह तपास होने से बहुत सुधार हो सकता है। फिर समझिये ये श्रीसंघ के तरफ से श्रीमंत और पूरे धर्मानुरागी जानकर जिस शेठ साहूकार को धर्मादे फंडका भार दिया गया था, कहीं २ ऐसा होता है कि वे तो अच्छी तरह अपना कर्त्तव्य पालन कर परलोक सिधारे और घरकी पुण्याई भी उसके साथ गई। जो औलाद पीछे रही, नालायक निकली। पहिले तो अपना ही घर खराब किया, पीछे उनकी धर्मादे फंड पर दृष्टि पड़ी, रकम उड़ती गई साथ साथ व्यावस्था मे भी गड़बड़ मची। सोचा, श्रीसंघ मे अपना पक्ष लेने वाले नहीं रहने से आगे गाड़ा अटक जायगा, अब अन्याय पक्ष बनाने लगे। इस अवसर में यदि सुधारकी व्यवस्था न हो तो कुछ दिन पीछे फिर ऐसे फंड से हाथ धोना पड़ता है। पुनः कई जगह ऐसे फंड के ट्रस्टीलोग आपस वालों को अपनी देख रेख मे जो धर्मादा फंड है उससे उधार देते हैं, पर समय पर वसूल करने को चेष्टा नहीं करते। फिर जब उनके मिलका काम मंदा पड़ा, उसने इनसालभेंसी ले लिया तो उनको जो धर्मादे की रकम उधार दी गई थी प्रायः सब डूब जाती है। ऐसी हालत मे बराबर जांच होती रहे तो यह नतीजा न गुजरे। किसी २ जगह वहीवट करने वाले लोग फजूल काम मे ज्यादे रकम खर्च देते हैं वहां भी बराबर तपास होती रहती तो यह नुकसान न होने पाता। और अब भी उन स्थानों में तपास होने से आगे को हानि रुक सकती है। पुनः किसी २ स्थलो मे ऐसा होता है कि बहुत दिनोंसे हिसाब नहीं देखा गया यहांतक कि खुद ट्रष्टी ने भी न देखा होगा। फिर जब समय आया, श्री संघ चेते, तब ट्रष्टी साहेब की आंखे खुली। देखा, बहुत रकम नामे आती है। सायन्‌ बात बढ़े तो क्या करना। तब पहिले वही खाते कब्जे कर चट वकील के यहां सलाह लेने दौड़े। "द्रव्येन सर्ववशा."। फिर क्या? फास मिलते ही ओपिनियन। 'कुछ उपाय तो है नहीं' पर मंदायमन हो सकता है,

अगर धर्मादा खाता और रकम अपनी खानगी (प्राइवेट) बनाओ तो छुटकारा हो सकता है। खैर, 'मरता क्या नहीं करता' इस न्याय से उन्होंने ऐसा ही किया। अपना परलोक डुबाया, साथ ही धर्मादा फंड भी डूबा। परन्तु तपासणी होती रहती तो ऐसा कदाचित् न होता। किसी २ स्थान में जहाँ श्रीजिनचैत्यालय के लिये धर्मादे फंड थे वहा के ट्रष्टी लोग मंदिर मार्ग छोड़कर तेरेपंथी हुए है वे लोग प्रायः उस फंड के उद्देश्य पर उचित ध्यान नहीं देते और अपने नामों से रिपोर्ट बाहर निकालने में उनके साथ में निन्दा और उनके धर्ममें हानि पहुंचानेकी शंका रखते हैं। उन लोगों से भी विनीत प्रार्थना है कि वे इस ख्याल को छोड़ कर इस कार्य को एक श्रीसंघ का उचित और धर्मभार समझ कर उस फण्ड की अच्छी तरह सार संभाल करें और बराबर हिसाब को प्रकट करें। इसी प्रकार बहुत से दृष्टांत देखे जाते हैं और आप लोग रिपोर्टमे भी इस बातका खुलासा सुन चुके हैं। अपनी प्रजा वत्सल गवर्णमेंट भी इस ओर ध्यान देने-वाली थी परन्तु यह कर्त्तव्य खास अपना ही है। यदि अपने आलस्य को त्याग कर इस खातेके सुधार पर पूरी मदद देवें तो आशा है कि यह प्रस्ताव सब जगह कार्यमें परिणत होकर इसका उद्देश्य शीघ्र सफलता को प्राप्त करेगा। प्रस्ताव तो भाई लोगों के सामने ही उपस्थित है और मैं अनुमोदन करता हुआ पूर्ण आशा रखता हूं कि यह प्रस्ताव श्रीवीर शासन को जय बोलते हुए सर्व सम्मति से ग्रहण होगा।

---

११ वीं जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स १९७४, कलकत्ता के अवसर पर 'धार्मिक हिसाब तपासणी खाता' विषयक प्रस्ताव के अनुमोदनार्थ व्याख्यान ; ता० १ जनवरी १९१८।

वर्त्तमान समस्या

मैं जब से परिव्राजक स्वामी सत्यदेवजी का लेख सुनकर डाक्टर बनाजी के नाम से परिचित हुआ हूं तब से उनको एकबार मेरे नेत्र दिखाने की आंतरिक इच्छा थी। इन दिनो मेरे आखोंका धुंधलापन बढ़ जाने के कारण शीघ्र ही बम्बई जाकर उक्त डाक्टर साहेब से परीक्षा करा लेने का विचार करता ही था कि एकाएक समाचार-पत्रों में वहाँ के जैनी भाइयों में परस्पर वैमनस्य बढ़ कर कलह के विकट स्वरूप होनेका और पुलिस तक की सहायता लेने की नौबत आ जाने का समाचार सुनकर चिन्ता हुई।

अस्तु, मैं नागपुर मेल से रवाना हुआ और यथासमय बोरीबंदर स्टेशन पहुंचा। प्लेटफार्म पर मेरे मित्र उपस्थित थे। वे मुझे अपने मोटर से बंगले मे ले गये। वह एक स्वास्थ्यकर स्थान था और शहर से कुछ मील के फासले पर था। इसी कारण डाक्टरों से आंखें दिखलाने मे २।३ दिन लग गये। और भी कई कारणो से वहां कई दिन ठहरना पड़ा। वहां के साधर्मी बन्धुओ में पहले ही से 'दीक्षा' विषय पर जो हलचल मच रही थी इस पर प्रतिदिन संवाद पत्रिकाओ और हैण्डबीलों से जनता के विचार और वहां की परिस्थिति मुझे अच्छी तरह उपलब्ध होती रही। मैं भी इस विषय पर सोचता रहा और वर्तमान समस्या पर जो कुछ मेरा अनुभव हुआ है वह दो अक्षरों मे पाठकों के सन्मुख उपस्थित करने का साहस किया है। आशा है हमारे विचारशील पाठको को अरुचिकर न होगा।

सहृदय बन्धुगण समझते होंगे कि आज 'दीक्षा' का जो प्रश्न

उठा है इसकी मीमांसा अपने आगमादि सिद्धान्त के वाक्य पर ही निर्भर है, और श्रीवीर परमात्मा से लेकर आज तक जितने अल्पवयस्कों की दीक्षा हुई है उन दृष्टान्तों पर ही यह प्रश्न हल हो सकता है और इस विषय पर जो झगड़ा छिड़ा हुआ है उसका यही मुख्य कारण है। परन्तु हम यह कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। आज अपने जितने बड़े २ केन्द्र हैं जैसे 'राजनगर, जामनगर, सुरत, पाटन, पालनपुर, राधनपुर,' चाहे 'जैन' जैन-जीवन, वीरशासन' इत्यादि सर्व स्थान और पत्रिकाओं में भी उपस्थित 'दीक्षा' प्रश्न पर वादविवाद बढ़ता जाता है। दीक्षा' को ही प्रधान रोग समझ कर उसके निदान और औषधि की चारों ओर से चेष्टा हो रही है। मेरे तुच्छ विचार में इस रोग का कैसा ही निदान क्यों न हो, कैसी ही कड़ी से कड़ी औषधि क्यों न सेवन कराई जाय, यह रोग मुक्त की कदापि आशा नहीं है। कारण रोग दूसरा ही है। यह व्याधि कोई व्यक्तिगत, स्थानज, धार्मिक या सामाजिक नहीं है। यह समय का ज्वलंत उदाहरण है। आज आप जिस ओर आँखें खोल कर देखें वहीं समय का फोटो खिंचा हुआ मिलेगा। जो सज्जन असली स्वरूप को भूल कर नामवरी के लिये या है अंध-विश्वास से अथवा बहकाने से गरडिया प्रवाह की तरह अंध श्रद्धा को सरखेंगे वे थोड़े ही काल में अवश्य ठोकर खायेंगे। मैं किसी पक्ष की बातें पुष्ट करने को यह लिखने का प्रयास नहीं किया हूं, बल्कि अपने श्रीसंघ की साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं की शक्ति, समय और अर्थ अयथा नष्ट होते देखकर समय रहते अपना विचार प्रगट करना कर्त्तव्य समझ कर ही धृष्टता किया हूं। देखिये! छोटे बड़े सभों की दीक्षा बराबर होती चली आती था, फिर आज ऐसा प्रश्न क्यों उठा! मेरा यही एक उत्तर है कि समय के कारण ही आज यह तूफान उठा है, यह दलबंदियां हो रही हैं, लड़ने के लिये कोष संग्रह हो रहे हैं, यहांतक कि धर्म कथाओं में भी यही दंतकथा सुनी जाती है। व्याख्यान में नाना प्रकार के कटाक्षपूर्ण जोशीले भाषण हो रहे हैं और [illegible] पर अपना [illegible] रहा है।

मैं जब बम्बई मे था, सुना कि परस्पर मे समझौते के लिये दोनों दल से निर्दिष्ट संख्यक मेम्बर चुनाव होकर कलह का अन्त कर देंगे। ऐसे सरल प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने की चेष्टा भी होती रही परन्तु यहाँ तो रोग दूसरा ही था, कोई आशाप्रद शांति मार्ग दिखाई न पड़ा। देखिये! आज सभी समाज, सभी धर्मवाले 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' का हठ छोड़ कर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। चाहे किसी स्थान के कोई साधर्मी बन्धु अथवा किसी गच्छ के कोई भी आचार्य, किसी भी जैनागम के कोई भी मूल या टीकाओं की ओट मे समय के विरुद्ध कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यदि किसीको इस सिद्धान्त के विपरीत विश्वास हो तो उनका भ्रम है। वे धोखा खायगे। इस विषय पर एक ही सिद्धान्त को स्मरण रखिये कि समय कभी अन्याय का स्रोत नहीं बहाता। जिस समय लोग अपना २ कर्त्तव्य समझेंगे, दूसरों के हकों पर धावा नहीं डालेंगे, स्निग्धमस्तिष्क से जनता का मूल सिद्धान्त आंखें खोल कर देखेंगे तो हस्तामलकवत् स्वयं शान्ति हो जायगी; पुनः पूर्ण शक्ति और बल प्राप्त होगा। यह समय भविष्य के अन्धकार में है। यदि वर्त्तमान में रोग की अवधि दीर्घव्यापी होगी तो न जाने दिनोदिन कैसे २ नये उपसर्ग खड़े होते जायंगे। नये २ स्थानो मे भी विकट स्थिति दिखायी देगी और समझौते की बैठकों का कोई भी फल न होगा और जब अवधि के अन्त का समय समीप रहेगा उस समय अनायास ही पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जायगी।

अन्त मे परमात्मा से प्रार्थना है कि श्रीसंघ की ऐसी वर्त्तमान संकटमय समस्या के समय पारस्परिक ईर्षा और द्वेषभाव को दूर हटा दें और समयानुकूल विचार की शक्ति देकर श्रीसंघ के महत्व को अक्षुण्ण रखें।

'जैन-जीवन' ता० २३ सेप्टेम्बर सन् [illegible], एवं जैन-युग पु० [illegible], अङ्क १-२-३, १९८५-८६ पृ० १६-१७

श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन सम्प्रदायों की प्राचीनता

इस बातसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं कि जैन सम्प्रदाय श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो सम्प्रदायों मे विभक्त है। पाश्चात्य और भारतीय विद्वानोंने आज तक जितनी खोज की है, उससे इन दोनों सम्प्रदायो की प्राचीनता के सम्बन्ध में कोई संतोषप्रद ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। भारतीय विद्वानों में डा० भण्डारकर, डा० आचार्य, डा० बरुआ, डा० ला, और प्रोफेसर चक्रवर्ती, प्रो० विद्याभूषण प्रो० भट्टाचार्य, प्रो० शील इत्यादि वंगीय विद्वान आजकल जैनतत्व इतिहासादि विषयों की विशेष चर्चा करते हैं। ये महानुभाव पुस्तक तथा निबन्धादि लिख कर जैनतत्व और इतिहास की जो अमूल्य सेवा कर रहे हैं उसके लिये जैन समाज उनका चिर ऋणी रहेगा। वर्त्तमान कालमें पाश्चात्य विद्वानों मे भी जैनियों के प्राचीन इतिहास, तत्वज्ञान, इतिहास एवं आचार व्यवहार के बारे में विशेष चर्चा हो रही है जिनमें लब्धप्रतिष्ठ स्वर्गीय डा० बूलर, डा० बर्जेस, डा० हारनेल तथा डा० हार्मन जेकोबी, डा० ग्लासेनप, डा० गोणरीनो, डा० वीन्टर्नीज आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त डा० चार्पेन्टियर, डा० टामस, प्रो० शुब्रिं, मि० वारेन, डा० लोओमैन, डा० हार्टेल, डा० बर्नेट, डा० कुमारस्वामी और प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्व० विन्सेन्ट स्मिथ इत्यादि विद्वानोंने जैन धर्म सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों पर गवेषणापूर्ण पुस्तकें और निबन्ध लिखे हैं जिनसे अधिकांश पाठक भी परिचित होंगे।

इन दोनों सम्प्रदायों की प्राचीनता के विषय में मैंने जो कुछ

ऐतिहासिक अनुसन्धान किया है उन्हीं को पाठकों के समक्ष इस लेख में रख रहा हूं, आशा है जैन इतिहास प्रेमी भारतीय विद्वानगण इधर ध्यान देंगे और मुझे विश्वास है कि उनके परिश्रम के फलस्वरूप थोड़े ही समय मे सत्य का और भी पता लगेगा और इस विषय को एक प्रामाणिक पुस्तक तैयार हो सकेगी। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी और गुजराती भाषाओं में दोनों सम्प्रदायों की प्राचीनता की पुष्टिके लिये अलग अलग कई पुस्तकें लिखी गई है। मैं उन पुस्तकोंके सम्बन्ध में टीका टिप्पणी करने के उद्देश्य से अथवा श्वेताम्बर होनेके कारण अपने सम्प्रदाय की मर्यादावृद्धि के अभिप्राय से यह निबन्ध नहीं लिख रहा हूं बल्कि निरपेक्ष होकर प्रकृत सत्यके अनुसन्धान द्वारा इस विषय के भ्रम को दूर करने की पवित्र भावना से प्रेरित होकर ही इस ओर प्रयत्नशील हुआ हूं।

श्वेताम्बर और दिगम्बर शब्दों की व्याख्या करने से यही धारणा होती है कि दिगम्बर सम्प्रदाय अर्थात् वस्त्ररहित या नग्न अवस्था, श्वेताम्बर अर्थात् सफेद वस्त्रधारी सम्प्रदाय से पुराना है, पर वास्तव में यह धारणा भ्रमपूर्ण है। जिस प्रकार प्राकृत और संस्कृत शब्दोंके अर्थों पर ध्यान देने से यह मालूम होगा कि प्राकृत अवस्था संस्कृत से पहिले की है अतः प्राकृत भाषा संस्कृत भाषा की अपेक्षा प्राचीन होनी चाहिये परन्तु यह भ्रमात्मक है। वर्तमान समय मे प्राकृत भाषा के जितने ग्रन्थ मिलते हैं वे सब संस्कृत भाषा के वेदादि ग्रन्थों से बहुत पीछे के हैं यद्यपि नाम से यह मालूम होता है कि प्राकृत भाषा बहुत पुरानी है और उसी प्राकृत भाषा के क्रमशः परिमार्जित होनेसे संस्कृत भाषा की उत्पत्ति हुई है तथापि वैदिक काल से पूर्वका प्राकृत भाषा में लिखे हुये किसी ग्रन्थ का भी पता आजतक नहीं चलता। प्राचीन जैन इतिहास के देखने से यही मालूम होता है कि जैन सम्प्रदाय के श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति का इतिहास भी उपर्युक्त संस्कृत और प्राकृत भाषा के दृष्टान्त के समान ही है।

जैनलोग जिनदेव अर्थात् तीर्थंकरों के भक्त हैं और उनलोगों का यह विश्वास है कि जिनदेव द्वारा प्रणोदित शुद्ध धर्म-मार्ग ही निर्वाण प्राप्ति का एकमात्र साधन है। उनके मतानुसार सृष्टि और कालचक्र अनादि हैं। कालचक्र अनादि काल से चल रहा है और बराबर चलता रहेगा। उनलोगोंने कालचक्र को दो भागों में विभक्त किया है—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। कुण्डलाकार बैठे हुये किसी साँप के सिर से क्रमशः पूंछ पर्यंत और पुनः पूंछ से सिरतक यदि कोई चक्र चलता रहे और सिर से पूंछ और फिर पूंछ से सिरका यह क्रम जारी रहे तो जिस प्रकार उस चक्र की समाप्ति नहीं होगी ठीक उसी गति के समान कालचक्र भी घूमता है ऐसा समझना चाहिये। सिर से पूंछ की तरफ जानेकी गति को अवसर्पिणी और उसके विपरीत गति को उत्सर्पिणी नाम दिया गया है। इस अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल की गति से इतना ही समझाना पर्याप्त होगा कि जिस समय कालचक्र अवसर्पिणी गति से भ्रमण करेगा उस समय अच्छी अवस्था से क्रमशः बुरी अवस्था की तरफ और जिस समय उत्सर्पिणी गतिमें रहता है उस समय हीन अवस्था से क्रमशः अच्छी अवस्था की तरफ अग्रसर होता रहेगा। जैन मतानुसार यही काल-चक्र है। जिस प्रकार हिन्दुओंने काल को सत्य त्रेता द्वापर और कलि इन चार भागोंमें विभक्त किया है उसी प्रकार जैन लोगोंने भी अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी को क्रमशः छः छः भागोंमें विभक्त किया है। भेद इतना ही है कि हिन्दू मतानुसार कलियुग के बाद प्रलय होकर पुनः सत्ययुग का आविर्भाव होता है परन्तु जैनमत से कलियुग अर्थात् निकृष्ट अवस्था से एक वार ही सत्ययुग नहीं हो जाता बल्कि क्रमशः श्रेष्ठता प्राप्त होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यही अधिक सत्य प्रतीत होता है। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर आविर्भूत होते हैं। किन्तु यहां पर अप्रासङ्गिक होनेके भयसे इस विषय की अधिक आलोचना करना उचित नहीं है। इस विषय का अधिक जानकारी के लिये प्रेमी पाठक जैन ग्रन्थों का

अवलोकन कर सकते हैं। यहां इतना ही वतलाना पर्याप्त होगा कि वर्तमान काल की गति अवसर्पिणी है, इस कालमे प्रथम तीर्थंकर से लेकर महावीर तक कुल २४ तीर्थंकर हो चुके हैं इनमे अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीने ई० सन् से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण लाभ किया था इनके पूर्ववर्ती तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथने महावीरसे अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व यानी ७७७ खृष्ट पूर्व मे निर्वाण प्राप्त किया था। आधुनिक विद्वानगण तीर्थंकर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक युगके महापुरुष और इनके पूर्ववर्ती शेष २२ तीर्थंकरो को Prehistoric Period अर्थात् ऐतिहासिक युगसे पूर्व का मानते हैं।

भगवान महावीर के समय में जैनधर्म किसी सम्प्रदाय में विभक्त नहीं था। उनके बाद भी कई शताब्दी तक इसके अविभक्त रहने के प्रमाण मिलते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायवालो के आचारांग सूत्रादि ४५ प्राचीन धर्म ग्रन्थ हैं और उन्हें वे लोग जैन सिद्धान्त कहते हैं, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायवाले इन प्राचीन सूत्रादि को अमान्य करते हैं। दिगम्बरी लोग कहते हैं कि उक्त प्राचीन समस्त जैनागम नष्ट हो गये हैं। अतः वे लोग श्वेताम्बर सम्प्रदायवालो के मान्य आगमो को यथार्थ नहीं मानते थे। इन बातोंपर अच्छी तरह से विचार करने पर यह बतलानेकी आवश्यकता नही रह जाती कि प्राचीन जैन तत्व इतिहासादि के सम्बन्ध मे दिगम्बर ग्रन्थो का उपादान श्वेताम्बर ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत कम है। जैन दर्शनवित् समस्त विद्वानोंने भी श्वेताम्बर ग्रन्थोकी प्राचीनता मुक्त कंठसे स्वीकार की है। दिगम्बरियोंमे ऐसे प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

सम्राट अशोकके समयमें जैन साधु निर्ग्रन्थ नामसे पुकारे जाते थे और उनके प्राचीन शिला लेखमे इसी नामका उल्लेख भी है किन्तु निर्ग्रन्थ शब्दका नग्न साधु अर्थ करना उचित नहीं। निर्ग्रन्थ शब्दका अर्थ यहा ग्रन्थि रहित अर्थात रागद्वेषादि बन्धन मुक्त साधु समझना होगा। सम्राट अशोकके बाद कलिङ्गाधिपति महाराज खारवेलके नाम

से बहुत लोग परिचित होंगे। लब्धप्रतिष्ठ ऐतिहासिक मि० के० पी० जयसवाल महोदयने उदयगिरि और खण्डगिरिस्थित हस्तिगुफा नामक गुफासे प्राप्त उक्त जैन सम्राट खार्वेलके प्रसिद्ध शिला लेखको विस्तृत आलोचना की है। इसका समय ई० सन्से १७० वर्ष पूर्व निर्धारित हुआ है। इस शिलालेखमे सम्राट् खार्वेल द्वारा जैन साधुओंको भांति भांतिके पट्ट वस्त्र और श्वेतवस्त्र देनेका स्पष्ट वर्णन है। अतः यह अकाट्यरूपसे प्रमाणित होता है कि उस समय जैन साधुगण श्वेत और रेशमी वस्त्र भी धारण करते थे।

प्रसिद्ध दिगम्बर ग्रन्थ लेखक देवसेनाचार्यने अपनी दर्शनसार नामक पुस्तकमे लिखा है कि सितपट अर्थात् श्वेताम्बर संघकी उत्पत्ति सं० १३६ विक्रमीयमें हुई है परन्तु यह सर्वथा भ्रमात्मक और पक्षपातपूर्ण है। दिगम्बर मतानुसार यदि श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति सं० १३६ माना जाय तो उक्त शिला लिपिमें कथित महाराज खार्वेल द्वारा जैन साधुओंको श्वेतवस्त्र दान देने का वर्णन सम्भव नही, क्योकि यह शिला लेख ही विक्रमाब्दके प्रारम्भसे ११० वर्ष पूर्वका खुदा है। श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार महावीर तीर्थंकरके पूर्व, भगवान ऋषभदेवके बादसे भगवान पार्श्वनाथ पर्यंत २२ तीर्थंकरोंके समयमें जैन साधुगण वस्त्र व्यवहार करते थे। इसके बाद यानी चौवीसवे तीर्थंकर महावीर स्वामी के अभ्युदय कालमें सम्पूर्ण वस्त्र त्यागकी पद्धति चली। इससे यह अनुमान होता है कि भगवान् महावीरके समय तपस्याकी कठोरता अपनी चरम सीमापर पहुंच चुकी थी। महावीर स्वामी गृह त्यागी होकर सन्यास ग्रहण करनेके बाद कुछ समयतक शरीरपर एक वस्त्र धारण करते थे, परन्तु पीछे उन्होंने अपने एकमात्र वस्त्रका भी त्याग कर दिया। उन्होंने किस कारणसे सम्पूर्ण वस्त्रोंका परित्याग किया था, इसका निरूपण करना वास्तवमें बड़ा कठिन है। उस समयकी घटनाओंका जो कुछ संग्रह हो सका है, उससे यह प्रगट होता है कि महावीर स्वामीके समयमें धार्मिक प्रतियोगिता पराकाष्ठापर पहुंच चुकी

थी और धर्म सम्बन्धी आध्यात्मिक विचार पूर्ण उन्नति लाभ कर चुके थे। प्रचलित धर्मोंके विरोधीगण बहुत बड़ी संख्यामें उस समय देश-देशान्तरोमे भ्रमण कर रहे थे और सम्पूर्ण रूपसे संसार त्यागके गुणागुण के निर्णय की चर्चा जोरो पर थी। भगवान् महावीर ने भी सर्व त्यागी होकर अर्थात् अपने एक मात्र वस्त्र का भी त्याग कर उस समय के आदर्श त्याग की उग्रता को दिखाया था। सम्भवतः सभी वस्त्रों के त्याग का नियम उन्होने अपने समकक्ष उच्च श्रेणी के जैन साधुओ के लिये ही निर्धारित किया था। उन्होंने किसी युग विशेष अथवा समस्त जैन साधुओं और साध्वियों के लिये इस प्रकार से वस्त्र त्याग का समर्थन नहीं किया था, तो भी दिगम्बर मतावलम्बी साधुगण न मालूम क्यों इस समय भी उलङ्ग रहते हैं। इस प्रकार दिगम्बर लोगो द्वारा प्राचोन जैन सूत्रादि की अवहेलना कर नवीन जैन-शास्त्र और इतिहास की रचना करने के फलस्वरूप मूल जैन सिद्धान्त, प्रकृत जैन धार्मिक तत्व तथा इतिहास मे जो कुछ परिवर्तन हुआ है उसकी विस्तृत व्याख्याकर लेख के कलेवर को बढ़ाने की आवश्यकता नही। दो एक दृष्टान्त ही इसके लिये पर्याप्त होगे।

दिगम्बर सम्प्रदायवाले स्त्रियो के मुक्ति के अधिकार को नही मानते, किन्तु मौलिक जैन सिद्धान्त की दृष्टि से स्त्री-पुरुषों की आत्मा में कुछ विभिन्नता नही है। आत्मा अनन्तबली है। वह केवल कर्म-वशात् स्त्री या पुरुष रूप में जन्म ग्रहण करती है। अर्जित कर्मो के क्षय हो जानेसे मुक्ति प्राप्त होती है इसमें जाति अथवा लिङ्ग भेद कुछ भी बाधक नही। श्वेताम्बर सम्प्रदायवाले इस अनादि और प्राचीन जैन-सिद्धान्त को मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से मुक्ति का अधिकार है। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायवालो मे इसी प्रकार के और भी अनेक भेद देखने को मिलेगे।

दिगम्बर सम्प्रदायवाले चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी को

अविवाहित और वाल ब्रह्मचारी मानते हैं। परन्तु श्वेताम्बर मतानुसार महावीर स्वामी का विवाह हुआ था और उनकी विवाहिता स्त्री यशोदा के गर्भ से प्रियदर्शना नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। दिगम्बराचार्य जिनसेन द्वारा रचित हरिवंश पुराण मे महावीरस्वामी के विवाह का उल्लेख है। दिगम्बर मतावलम्बी जैन विद्वान् प्रोफेसर हीरालाल जैन पिटर्सन की चतुर्थ रिपोर्ट के १६८ वें पृष्ठ के ६ से लेकर ८ श्लोकों में हरिवंश पुराण से उद्धृत उक्त उत्सव का वर्णन देखकर इस अंशके उक्त पुराण की किसी पुरानी हस्तलिखित प्रतिमे होनेके वारे मे सन्देह किया था परन्तु वंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय तथा और स्थानों मे सुरक्षित हरिवंश पुराण की पुरानी प्रतियों मे यह अंश वर्तमान है। अतएव इन श्लोकों की प्राचीनता के सम्बन्ध में सन्देह का कोई कारण नहीं है। जिनसेनाचार्य के समान प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थकारने जब अपनी पुस्तक मे महावीरस्वामी के विवाहोत्सव का वर्णन किया है, तब यह समझ मे नही आता कि किस कारण से दिगम्बर लोग उन्हे अविवाहित मानते हैं।

अब मूर्ति और मूर्तिपूजा द्वारा भी इन दोनो सम्प्रदायो की प्राचीनता की आलोचना करनी उचित समझता हूं। मूर्तिपूजा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, इस सिद्धान्तमें मतभेद नहीं है। इससे यह प्रमाणित होता है कि जैन लोग प्राचीन कालसे मूर्तिपूजा करते आ रहे हैं। इसका काफी प्रमाण मिलता है कि भगवान महावीर के निर्वाणलाभ के बहुत समय पीछे तक उनके मतावलम्बियो में श्वेताम्बर और दिगम्बर नामका कोई सम्प्रदायभेद नही था। भगवान महावीर ने सम्पूर्ण वस्त्रोंका परित्याग कर तत्सामयिक अवस्थानुसार निश्चय ही त्यागकी चरम सीमाका आदर्श रखा था और इसके फलस्वरूप उनके मतावलम्बियोंने नग्न मूर्तिकी प्रतिष्ठा की इसमें कोई आश्चर्य नही है। इसी कारण मथुरा के निकट कंकाली टीला नामक स्थान से जितनी जैनमूर्तियां खोदकर निकाली गयी हैं, उनमे से

अधिकांश कायोत्सर्ग मुद्राकी खड़ी मूर्तियां दिगम्बर हैं अर्थात् उनमें पुरुष चिन्ह वर्तमान हैं। इन प्राचीन जैन मूर्तियोंपर जो कुछ खुदा है, उससे उस समय के प्रचलित गण, गोत्र, कुल, शाखा और गच्छ इत्यादिका पूर्ण विवरण मिलता है। किसी-किसी मूर्तिमे समसामयिक महाराज कनिष्क और हविष्क इत्यादि राजाओंके शासनकालका भी उल्लेख है, परन्तु विक्रमकी ११ वीं शताब्दी से पूर्व उस समय के जैन लोगों मे सम्प्रदाय विभेदका कुछ भी उल्लेख आजतक नहीं मिला है। विक्रमकी ११ वीं शताब्दी के बादकी जो कुछ मूर्तियां वहां मिली हैं, उनमे कहीं कहीं श्वेताम्बर शब्दका उल्लेख वर्त्तमान है; किन्तु उस समय की मूर्तियों की शिला लिपिमें आजतक "दिगम्बर" शब्द कहीं नहीं मिला। पाठकगण इससे सहज ही अनुमान कर सकते है कि प्राचीन काल मे जैनियों मे कोई सम्प्रदाय भेद नहीं था। इन शिला लिपियों मे कुल, गण शाखा गच्छ इत्यादिका जो कुछ उल्लेख आया है, प्रायः वह सब श्वेताम्बरी लोगों के कल्पसूत्रादि ग्रन्थों मे वर्णित हैं, किन्तु दिगम्बर लोगों के किसी ग्रन्थमें इन शाखा कुल प्रभृतिका उल्लेख नहीं मिलता। अतएव श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अपेक्षा दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन कहना भ्रमपूर्ण है।

पाठकगण निम्नाङ्कित एक और दृष्टान्त से यह भली भांति समझ जायंगे कि दिगम्बर सम्प्रदायवाले अपने सम्प्रदायकी प्राचीनता साबित करने के लिये चाहे जितने भी प्रमाण और व्याख्याएं क्यों न उपस्थित करें, पर वे इतिहास की दृष्टि से मूल्यवान नहीं हो सकते और इस दृष्टान्त द्वारा श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होती है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मतानुसार चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर अपनी क्षत्रियानी माता त्रिशला के गर्भ से जन्म ग्रहण करने के पूर्व देवानन्दा नामक ब्राह्मणी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे। पश्चात् इन्द्रादेश से हरिनैगमेसी नामक देवताने देवानन्दाके गर्भ से भगवान् महावीरको उठाकर माता त्रिशलाके गर्भ में स्थापित किया

था। यह घटना श्वेताम्बरी लोगों के प्रसिद्ध कल्पसूत्र नामक ग्रन्थ मे सविस्तार वर्णित है। इसी दृश्य की एक सुन्दर भास्कर शिला मथुराके कांकाली टीले से प्राप्त हुई है। पाठक विंसेंट स्मिथकी 'जैन-स्तूप एन्ड अदर एन्टीक्वीटीज आफ मथुरा' Vincent Smith's Jaina Stupa and other Antiquit es of Mathura नामक पुस्तकके २५ वें पृष्ठ मे इसे देख सकते हैं। लिपितत्त्व-विशारदों ने इस बातको प्रमाणित किया है कि उक्त शिला लेख ई० सन् से एक शताब्दी पूर्व से भी कुछ पहलेका है। दिगम्बर सम्प्रदाय के किसी ग्रन्थ और उन लोगो द्वारा रचित महावीर स्वामी की जीवनी मे इस प्रकार की किसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। वे लोग इस गर्भापहारकी आख्यायिका पर भी विश्वास नही करते। इससे यह सिद्ध होता है कि दिगम्बर ग्रन्थो की अपेक्षा श्वेताम्बर ग्रन्थ अधिक प्राचीन हैं और इनके विचार और भी पुराने हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता और दिगम्बर सम्प्रदाय की अर्वाचीनता के सम्बन्ध मे और भी एक उल्लेखनीय विषय पाठकों के समक्ष रख मैं इस निबन्ध को समाप्त करूंगा। जैन तीर्थंकर न केवल स्वयं सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते हैं, वरन् वे तीर्थ अर्थात् संघोंकी स्थापना भी करते हैं। प्राचीन जैन सिद्धान्तानुसार ये तीर्थ अथवा जैन संघ चार प्रकार के होते हैं। बौद्ध धर्म में भी भगवान बुद्ध देवने संघ की स्थापना की थी। जैन संघ के साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चार भेद हैं। जैन ग्रन्थोमें वर्णित चउविह संघ अर्थात् चारों प्रकार के संघो की, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर महावीरतक प्रत्येक तीर्थंकर ने अपने अपने अभ्यु-त्थान कालमें इसी प्रकारसे स्थापना की थी। जैन साधु अर्थात् पुरुष संसारत्यागी संन्यासी, साध्वी अर्थात् स्त्री संसारत्यागिनी संन्यासिनी, श्रावक यानी जैन धर्मोपासक पुरुष गृहस्थ और श्राविका अर्थात् जैन धर्मोपासिका स्त्री गृहस्थ इन चार प्रकार के संघों की

स्थापना सम्बन्धी पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेवसे लेकर तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ तकका इतिहास दुष्प्राप्य है। इतिहास से यह मालूम होता है कि दिगम्बरी लोगो की यह धारणा सर्वथा निर्मूल है कि महावीर स्वामी के समय में जब संघोंकी स्थापना हुई थी, उस समय मुक्ति के विषय मे स्त्रियोका पुरुषों के समान अधिकार नहीं था और स्त्रियो के लिये संन्यास ग्रहण वर्जित था। उस समय उत्तर भारत मे वैदिकधर्मकी शक्ति पराकाष्ठापर थी। ब्राह्मण लोग धर्म और धर्मानुष्ठानके एकमात्र ठेकेदार बन बैठे थे और धर्म के नामपर असंख्य पशुओ के रक्त से पृथ्वी रंजित को जाती थी। बुद्धदेव इस अमानुषिक हिंसा और तत्कालीन कठोर तपस्याको निस्सारता दिखा-कर अपने ज्ञानार्जित नवीन धर्म का प्रचार कर रहे थे। भगवान महावीर भी लुप्तप्राय जैन धर्ममे पुनः प्राण प्रतिष्ठा कर आत्मा के कल्याणार्थ सत्य-धर्म मार्ग का उपदेश कर रहे थे। इस धार्मिक द्वन्दकाल में यदि महावीर स्वामी दिगम्बर मतानुसार स्त्री जातिको हीन समझ कर उन्हें अपने स्वाभाविक अधिकारों से वंचित करते तो जैन धर्म का अस्तित्व ही मिट जाता।

तीर्थंकर महावीर के उपदेश, उदार और सरल थे। उनके मतानु-सार जैन, अजैन, श्वेताम्बर, दिगम्बर, हिन्दू, बौद्ध, इत्यादि सभी धर्माव-लम्बी को आत्मा को निर्वाणलाभ का अधिकार है। परन्तु दिगम्बर मतानुसार केवलमात्र दिगम्बर मतावलम्बी और उनमें भी पुरुष ही मुक्ति के अधिकारी हैं। प्राचीन जैन धर्मग्रन्थों मे कहीं भी इस प्रकार का अनुदार भाव दृष्टिगोचर नहीं होता। सभी प्राचीन जैनधर्मोपदेशों में उच्चादर्श के जाज्वल्यमान प्रमाण भरे पड़े हैं और इन मौलिक ग्रन्थों की प्राचीनता भी वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध हो चुकी है किन्तु यह दुःख का विषय है कि दिगम्बर सम्प्रदाय ने इन मूल ग्रन्थो को अग्राह्य कर दिया है। सम्भवतः दिगम्बर सम्प्रदाय के धर्मतत्त्व और नीति अनुदार तथा अदूरदर्शी होने के ही कारण मुसलमान राजत्व काल में किसी

प्रकार की भी उन्नति न हो सकी। अबुल फजल ने अपनी आईनी अकबरी नामक पुस्तक में लिखा है कि सम्राट् अकबर के समय में बहुत चेष्टा करने पर भी जैनियों के इस नग्न यानी दिगम्बर सम्प्रदाय का कोई पता नहीं चला परन्तु इस समय अंग्रेज राजत्व काल मे शान्तिमय युग में वे अपनी मर्यादा वृद्धि करने की चेष्टा कर रहे हैं।

इस प्रसंग मे और भी एक वात का उल्लेख कर देना उचित होगा। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् पंचम संघनायक यशोभद्रजी ने सम्भूति विजय और भद्रबाहु नामक दो शिष्योको रखकर स्वर्गारोहण किया। इनके पश्चात् आचार्य्य सम्भूतिविजय छठे और उनके गुरुभाई सातवें संघ नायकके पदपर अधिष्ठित हुए। दिगम्बर लोगोंका कहना है कि इन्हींके समय सम्राट् चन्द्रगुप्त के राजत्वकाल मे १२ वर्ष-व्यापी भीषण अकाल पड़ा। उस समय अन्नाभावके कारण जैन साधुओं के लिये जीवन यापन करना कठिन हो गया, अतः भद्रबाहु स्वामी यह विकट स्थिति देख बहुत साधुओं के साथ पाटलीपुत्र (पटने) से दक्षिण दिशा मे चले गये। दिगम्बरी लोग कहते हैं कि इसी समय सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी भद्रबाहु स्वामी के साथ दक्षिण दिशा मे प्रस्थान किया और जैन दीक्षा ग्रहण कर श्रवण बेलगोले के निकट पहाड़ की कन्दरा में तपस्याकर प्राण त्याग किया। आज भी यह स्थान चन्द्रगिरि के नाम से प्रख्यात है और यहां की शिलालिपि में इस घटना का वर्णन भी खुदा है, परन्तु किसी संघ के इतिहास अथवा श्वेताम्बर धर्म ग्रन्थों में इस प्रकार चन्द्रगुप्त के दक्षिण जाने और साधु होने का उल्लेख नहीं है। और भी जहांतक प्राचीन अजैन इतिहास देखने को मिलता है, उसमें मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त की ही दक्षिणयात्रा अथवा दक्षिण दिशा में मृत्युका कहीं वर्णन नहीं मिला है। दिगम्बरी लोगोंद्वारा कथित और शिलालेख द्वारा प्रमाणित घटना की दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। (१) यातो महाराज चन्द्रगुप्त का यह वृत्तान्त अन्य घटनाओं के आधार पर खोदा गया होगा अथवा (२) चन्द्रगुप्त

और भद्रबाहु ये दोनों व्यक्ति मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त और श्रुतकेवली भद्रबाहु न होकर इसी नामके दूसरे भद्रबाहु और कोई दूसरा चन्द्रगुप्त नामधारी राजा होंगे। इस दूसरी व्याख्या को ही आजकल के इतिहासवेत्ता ठीक मानते हैं।

उपर्युक्त दुर्भिक्षकाल मे अनेक जैन साधु दक्षिणदिशामें चले गये और वहां अपने अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार किया यह सर्वमान्य है। इतिहासमे इसके पर्याप्त प्रमाण हैं कि जैनधर्मप्रचारमें यहां उन्हे काफी सफलता भी मिली थी। उस समय धर्मोपदेशोंको पुस्तकाकारमे लिखनेकी आवश्यकता पड़ी। उत्तर भारतके सभी जैन साधुगणोंमें प्रसिद्ध मथुरा नगरी और सौराष्ट्र प्रान्तस्थ वल्लभी नामक नगरी मे एकत्रित होकर प्राचीन सूत्रादि और भगवान महावीर के उपदेशों का संग्रह कर लिपिवद्ध किया था। किन्तु दक्षिण प्रान्तीय साधुओं ने उत्तर प्रान्त के साधुओं की तरह न तो कहीं एकत्रित होकर प्रान्तीय मौलिक तत्व और इतिहासादि का संग्रह ही किया और न उत्तर भारत के साधुओ द्वारा संगृहीत सूत्रादि को ही प्रमाणित माना, वल्कि उन लोगोने स्वेच्छा पूर्वक अलग ही धर्मग्रन्थ और इतिहासादि की रचना कर डाली। उस समय के लिखे हुए धर्मग्रन्थादि ही वर्तमान दिगम्बर सम्प्रदायवाले जैनियो के प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं। इतिहास और प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि इसी प्रकार क्रमशः जैन सम्प्रदाय मे दो विभाग हुए और ईस्वी की पहिली शताब्दी मे श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो विभिन्न सम्प्रदायों का नामकरण हुआ।

उपर्युक्त सभी बातोंको भलीभांति मनन करने और ऊपर बतलाये प्रमाणो तथा दोनों संप्रदायों के मान्यग्रन्थों और इतिहासादि के अध्ययन के पश्चात् निरपेक्ष भाव से समालोचना करने से श्वेताम्बर सम्प्रदाय की सब प्रकार से प्राचीनता सिद्ध होती है। श्वेताम्बरी

लोग ही मूल जैन सम्प्रदाय के हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय की पृथक नवीन सृष्टि होनेपर ये श्वेताम्बर नामसे प्रसिद्ध हुए।

सेयंवरो य आसं वरो य बुद्धो अ अहव अन्नो वा,
समभाव भावि अप्पा लहेइ मोक्खं न सन्देहो।

—श्वेताम्बराचार्य रत्नशेखर

'ओसवाल नवयुवक' (सं० १९८६ वर्ष २, अङ्क १०, पृ० ३४५-३५२)

पावापुरी का जल मन्दिर

आप श्री पावापुरी का नाम अवश्य सुने होंगे। यहां का जलमन्दिर बहुत रमणीय है। यहां का न केवल दृश्य ही मनोहर है वरन् इसी स्थानमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी का निर्वाण होने के कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया है। आज से २४५७ वर्ष पहले पावापुरी ग्राम मे भगवान महावीर का मोक्ष हुआ था और ग्राम के वहिर्भाग मे जहाँ उनके भौतिक देह का अग्नि संस्कार हुआ था वहां मंदिर 'जलमंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है। श्वेताम्बरी शास्त्रका कथन है कि जहां महावीर तीर्थंकर का अग्निसंस्कार हुआ था उस स्थान को पवित्र समझ कर देवता मनुष्यादि उस समय जितने उपस्थित हुये थे वहांकी मिट्टी और भस्म उठा ले गये थे और इसीसे वहां गढा हो गया था। पश्चात् अन्य जो लोग वहा गये वे सब भी वहां का थोड़ा २ मिट्टी ले गये और वह गढ़ा क्रमशः तालाव सा हो गया। कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या की रात्रिको भगवान का निर्वाण होनेके कारण इस दिवाली पर यहां भारतके नाना स्थान से श्वेताम्बरी और दिगम्बरी दोनो सम्प्रदाय के जैनी लोग आज भी सैकड़ों हजारों की संख्या में आते हैं। उस समय यहां की शोभा देखने ही योग्य होती है। यह स्थान पटना जिला के विहारशरीफ शहर से दक्षिण ओर लगभग सात मीलपर स्थित है। यहां का तालाव भी जिसके बीच में वह जलमंदिर है बड़ा विस्तृत है। मंदिर में पहुचने के लिये सुन्दर पत्थर का प्रायः दो सौ गज लम्बा एक पुल भी बना हुआ है। मंदिरमें मकराने की तीन वेदियोंमें महावीर भगवान और उनके प्रथम शिष्य गणधर गौतम तथा पांचवें शिष्य

सुधर्मस्वामिके चरण श्वेताम्बरी सम्प्रदाय की ओरसे प्रतिष्ठित हैं। दिगम्बरी लोग भी सेवा पूजा करते हैं। बड़े ही दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे तोर्थस्थान में भी अशांति चल रहा है। शताब्दियों से इस तीर्थ का कुल प्रबन्धादि श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ओरसे ही होता चला आ रहा है; परन्तु खेद है कि मतभेद और कलह बढ़ाने के अभिप्राय से ही दिगम्बरी लोगोने कुछ दिनोंसे और और तीर्थों की तरह यहांपर भी मुकदमा किया है जिसका फैसला पटना सबजज कोर्ट से हाल ही में हो चुका है। समय, शक्ति और अर्थव्यय के अतिरिक्त इस से कोई लाभ नही होता। धार्मिक और सामाजिक विषयो का अंत मुकद्दमाबाजी से कदापि नहीं हो सकता है। हजारों रुपये स्वाहा करके अंत मे स्थिर होकर बैठना ही पड़ता है। यदि ये द्रव्य स्वार्थान्ध होकर मुकद्दमे वगैरह मे न खर्च किया जाय और ऐसे ऐसे अपव्यय का दूसरा २ सदुपयोग हो तो देशवासियो को इससे कितना लाभ हो? अभी देशमें कितनी अच्छी संस्थाये तथा कितने आवश्यक सर्वसाधारण उपकारार्थ कार्य है जो अर्थ के अभाव में शिथिल पड़े हैं, लेकिन इस ओर कोई भी ध्यान नही देते।

श्रीपावापुरी ग्राम में जो मंदिर है वह भी बहुत भव्य बना हुआ है। दिगम्बर सम्प्रदाय वाले उस स्थान को अवश्य पवित्र नहीं मानते परन्तु श्वेताम्बरी लोग भगवान महावीर का वही निर्वाण स्थान कहते हैं और उसी मंदिर में भगवान की मूर्त्ति और चरणो की सेवा पूजा करते हैं। यहां महावीर स्वामी के गौतम आदि १८ प्रधान शिष्यों के चरण भी प्रतिष्ठित हैं। प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि शाहजहां बादशाह के समय में विहार-निवासी मथियान श्वेताम्बर श्रीसंघ की ओरसे वर्त्तमान मंदिरकी प्रतिष्ठा सं० १६९८ मे हुई थी। यहां पर यात्रियों के ठहरने का अच्छा इन्तजाम है और विहार-निवासी बाबू धन्नूलालजी सुचन्ती, जमींदार श्वेताम्बर श्रीसंघ की ओरसे देख रेख करते हैं।

'स्वाधीनभारत' (दिवाली का साधारण अंक, मंगलवार २१ अक्तूबर १९३०, भाग २ अंक ८१)

जैन धर्म पर विद्वानों के भ्रम

आज पाठको के सन्मुख जिन महत्वपूर्ण उद्देश्यो को लेकर यह संघजात पत्रिका उपस्थित हुई है उनमे से एक उद्देश्य जैनधर्म के विषय मे फैले हुए भ्रममूलक विचारों को दूर करना भी है, यह चेष्टा सर्वथा प्रशंसनीय है। इस पवित्र धर्म और इसके तत्त्वोंके सम्बन्धमे जो भ्रमात्मक विचार अजैनो मे फैले हुए हैं उनका समाधान करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारत के विभिन्न धर्म और समाज पर जितने गवेषणापूर्ण निबन्ध और पुस्तकें प्रकाशित होती गईं उन सभों के उल्लेख की यहां आवश्यकता नही है परन्तु उन मे भ्रमपूर्ण विषयो के समावेश के कारण फलस्वरूप अद्यावधि जो कुछ भ्रम देखने मे आते हैं, उन पर ही २—१ शब्द लिखने का साहस किया है। यदि मेरे प्रयास से तनिक भी उद्देश्य की सफलता हुई तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

देखिये! हाल मे ही भारतीय रेलवे पब्लिसिटी ब्युरो से 'भारत और ब्रह्मदेश' (India and Burma) भ्रमण के लिये एक हैण्डबुक प्रकाशित हुई है जिस के आठवें परिच्छेद पृ० ८३ में विभिन्न धर्मों की वर्णना करते हुए जैनधर्म पर इस प्रकार लिखते हैं कि जैनधर्म के जन्मदाता महावीर जिन के धर्मोपदेश बौद्धधर्म से मिलते जुलते थे, बुद्धदेव के समकालीन थे। देखिये! वर्षो होने चले कि कई बड़े २ विद्वानो ने पूर्णरूप से ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध कर के जैनधर्म को अति प्राचीन बतलाते हुए बौद्धधर्म के शताब्दियों पहले से ही इस का अस्तित्व स्वीकार किया है। अतः आज पुनः यह भ्रम रहना खेद

का विषय है। प्रस्तुत पुस्तिका का यह निबन्ध ई० रोजेन्थल एफ० आर० जी० एस० (E Rosenthal F. R. G. S.) महोदय का लिखा हुआ है। इस देश मे पहुंचते ही यदि विदेशियों को इस धर्म की प्राचीनता का भाव इस प्रकार विपरीत हो जाय तो वह शीघ्र दूर होना कठिन होगा। आप लिखते है कि ये दोनों याने बुद्धदेव और महावीर हिन्दूधर्म के संस्कारक थे, ध्वंसकारक न थे। परंतु यह युक्ति भी असत्य है। जैनधर्म के विचार स्वतंत्र हैं, वैदिकधर्म का रूपांतर नहीं है बल्कि स्याद्वादरूपी पक्की नींव पर अवस्थित है। बुद्धदेव के विचार भी वैदिकधर्म के संस्कृत रूप में नहीं हैं। आप ने भी स्वतंत्र क्षणभंगुर मत पर अपना धर्म विचार फैलाया था। जैन-तत्त्व पर लेखक महोदय की धारणा यह है कि जैन लोग तिर्यंच और वनस्पति में जीव (आत्मा) मानते हैं। यह विचार असम्पूर्ण है। जैनधर्म के तत्त्वों से यदि वे परिचित होते तो इस के जीव विचार भी इस प्रकार अपूर्ण नहीं लिखते। जैन लोग तिर्यंच और वनस्पति के अतिरिक्त जल, अग्नि, वायु पृथ्वी में भी एकेन्द्रीय जीव होना मानते हैं। लेखक आगे चल कर यह विचार प्रगट करते हैं कि जैन लोग हवा के प्रतिकूल नहीं चलते शायद ऐसा करने से उन के मुखविवर में कीट प्रवेश न कर जाय और इसी कारण वे लोग पानीय जल को भी तीन चार छान कर व्यवहार में लाते हैं। पाठक सोचें कि जैनियो के नित्य नैमेत्तिक आचारो पर अजैन लोग किस प्रकार कटाक्ष करते हैं इस का मूल कारण जैन धर्म के विषय मे उन लोगों की अज्ञानता है।

इसी प्रकार हाल में ही 'इण्डियन स्टेट रेल्वे मेगजिन' (Indian State Railway Magazine) जुलाई १९२० वर्ष ३ संख्या १० पृ० ७८८ में भी मैसूर अंतर्गत श्रावन बेल्गोला के जैन मूर्त्तियों का एक प्लेट प्रकाशित हुआ है वह दिगम्बर जैन मूर्त्तियों का है परंतु उन्हे शिव की मूर्त्ति बतलाया है।

देखिये ! मिस कैथरिन वल नाम की एक प्रसिद्ध अमेरिकन विदुषी जो संसार भ्रमण के लिये निकली हैं, थोड़े ही दिन हुए कलकत्ते आई हैं। आप क्यालिफोर्णिया के अंतर्गत स्यानफ्रांसिस्को के विद्यालय मे शिल्पकला का अध्ययन करती हैं। सन् १६२६ मे आपने सैंकड़ों चित्रों से सुशोभित 'डेकोरेटिव मोटिव्स आफ़ ओरिएण्टल आर्ट' (Decorative motives of Oriental Art) नामक एक पुस्तक लिखी है। उस के पृष्ठ २२३ मे 'मयूर' पर आप का जो विवरण है उस का कुछ अंश हमारे पाठकों के कौतुहलार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है—

"Another deity shown using the peacock for a mount, is of the five manifestations of Kokuzo, the Hindu Akasa Garbha, a God of wisdom, while again among the Jains of Tibet of the five celebrated Buddhas, the meditative Dhyani of the west also uses a peacock for the same purpose."

उपरोक्त अंश देने का तात्पर्य इतना ही है कि तिब्बत में भी जैन-धर्मावलम्बी हैं ऐसी अमेरिका निवासियो की भ्रमात्मक धारणा अब तक है, परन्तु तिब्बत में एक भी जैनी नही है।

इसी प्रकार सारे सभ्य संसार में अपने जैनियो और जैनधर्म के विषय में नाना प्रकार के भ्रममूलक सिद्धान्त देखने में आते हैं। ऐसे फैले हुए विरुद्ध भ्रमों को दूर करना अत्यावश्यक है।

'आत्मानन्द' (जनवरी-फरवरी १६३१, वर्ष २ अङ्क १, पृ० ३१-३२)

जैन जाति का आधुनिक बंधारण हानि कारक है या लाभ दायक?

कुछ समय हुआ कि "श्वेताम्बर जैन" (भा० ४ संख्या ३६) मे मुनि महाराज श्री विद्याविजयजी का "जैन जाति" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। आपने इसमें जैन जातियों के सामाजिक संकुचित भावों को विशद रूप से दिखलाया है। आपके विचार में इसी कारण जाति संख्या घट रही है। आप प्रश्न करते हैं "जैन जाति का आधुनिक बंधारण जैन धर्म और जैन समाज को हानिकारक है या लाभकारक?" और प्रत्येक जैनियों को खास कर जैन नेताओं को इस प्रश्न पर विचार करने के लिये कहते हैं। पश्चात् आपने विद्वत्ता के साथ वर्त्तमान जाति बंधारण से समाज और धर्मपर जिस प्रकार अनिष्ट हो रहा है वे बड़ी सुन्दरता से दिखालये हैं। परन्तु मैं समझता हूं कि समाज की यह हानिया जाति बंधारण के लिये नही आरम्भ हुई हैं। धार्मिक बंधारण, धार्मिक उपदेशकों और आचार्यो के मतभेद ही इनका मूल कारण हैं। यदि जैन धर्म केवल आचार्यों पर निर्भर न रहता तो जाति बंधारण की कदापि ऐसी सृष्टि नहीं हो सकती। यदि वीर परमात्मा की वाणी सुनने के लिये केवल उन लोगों के मुख कमल की तरफ ताकना न पड़ता, तो संभव है कि "जैन जाति" के वर्त्तमान बंधारण में जिस कारण विशेष हानि उपस्थित है उसे देखने का अवसर न मिलता। यदि धार्मिक विषयों में मतभेद न रहे, यदि धर्म का समाज पर पूर्ण शासन रहे तो समाज में अथवा जाति मे मनमाने बंधारण होने की संभावना नहीं रहती। अतः चाहे

श्वेताम्बर चाहे दिगम्बर, चाहे स्थानकवासी चाहे तेरहपन्थी कोई भी हो जैनी नाम धारक समस्त जैनाचार्यों को और जैन धर्मोपदेशकों को नम्र निवेदन है कि धार्मिक मतभेद रूप अग्निकुण्ड जिसमें जैन समाज की तरह और और समाज भी भस्म हो रहे है, इस विषय पर गंभीर विचार करें और शीघ्र ही समयानुकूल उपाय निकाल कर समस्त जैन जाति और समाज की रक्षा करें।

"श्वेताम्बर जैन" ६ अगस्त १६३१ (भाग ६ संख्या ३५, पृ० ७)

भगवान पार्श्वनाथ

आज से प्रायः २८०० वर्ष पूर्व इतिहास प्रसिद्ध पवित्र बनारस नगरी मे इक्ष्वाकु वंशीय अश्वसेन राजा की महिषी रानी वामादेवी के गर्भ से पौषमास कृष्णपक्ष की दसमी तिथि को आधीरात के समय जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जन्म ग्रहण किया था।

युवावस्था प्राप्त होने पर कुशस्थलाधिपति राजा प्रसेनजित की कन्या प्रभावती के साथ उनका विवाह हुआ। भगवान् पार्श्वनाथ तीस वर्ष की अवस्था तक गृहस्थाश्रम मे रहने के बाद सर्व परिग्रह परित्याग करके दीक्षा ग्रहण करके घोर तपस्या मे लग गये। उन्होने केवल ८३ दिन तक तपस्या की, इस तपस्या काल मे दैविक, भौतिक और मानुषिक आदि नाना प्रकार के उपसर्गो के उपस्थित होनेपर भी वे ध्यानसे विचलित नहीं हुये। ८३ वें दिन के अन्तमे उनको लोका-लोक प्रकाशक केवल ज्ञान प्राप्त हुआ, इसी जीवनमुक्त कैवल्यावस्था मे ७० वर्ष तक तीर्थंकर रूपसे धर्म प्रचार करते हुये ७७७ खृष्ट पूर्व १०० वर्ष की अवस्था में श्रावण शुक्ला अष्टमी तिथि को उन्होने परम निर्वाण लाभ किया। यही भगवान् पार्श्वनाथ की संक्षिप्त जीवनी है।

१९ वीं शताब्दी तक इतिहास वेत्ता गण भगवान् पार्श्वनाथ को पौराणिक अथवा काल्पनिक व्यक्ति समझते थे। परन्तु वर्त्तमान कालमें प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अन्वेषण के फलस्वरूप इस धारणा में परिवर्तन हुआ है और पार्श्वनाथ ऐतिहासिक युग के व्यक्ति माने जाने लगे हैं। इस समय प्रो० जेकोबी विन्सेण्ट स्मिथ, डा० गॉयरीनो, डा० ग्लेसेनप इत्यादि पाश्चात्य विद्वानोंके मतसे अन्तिम

तीर्थंकर भगवान् महावीर के पूर्व भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा प्रणोदित चतुर्याम धर्म प्रचलित था।

यही चतुर्याम धर्म जैन धर्मका मूल तत्व है और भगवान् महावीर के माता पिता भी इसी अहिंसादि चतुर्याम धर्मके अनुयायी थे। पश्चात् भगवान् महावीर ने पञ्चयाम धर्म का प्रचार किया। यद्यपि प्राय: ३००० वर्ष वीत गये तो भी भगवान् पार्श्वनाथ के व्यक्तित्व की स्मृति आज भी प्रत्येक जैन के हृदय पट मे साहित्य, इतिहास और भास्कर में अक्षुण्ण रूप से वर्तमान है।

श्वेताम्बर मतावलम्बियो के प्रसिद्ध कल्पसूत्र के प्रथम अंश के प्रारम्भ मे जो तीर्थंकरो की जीवनी दी गई है, उसमें भगवान् पार्श्व-नाथ की केवल संक्षिप्त जीवनीमात्र है। परन्तु प्राकृत और संस्कृत भाषाओ मे लिखी हुई उनकी अनेक विस्तृत जीवनी मिलती हैं। उनमे से नीचे लिखी हुई कई एक जीवनियां विशेष उल्लेखनीय है:—

(१) वि० सं० ११३९ पद्मसुन्दर गणि कृत पार्श्वनाथचरित्र
(२) „ „ ११६५ देवभद्र सूरि „ „ (सं० प्रा०)
(३) „ „ १२२० हेमचन्द्राचार्य „ „
(त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र नवम पर्व)
(४) „ „ १२७७ माणिकचन्द्र कृत पार्श्वनाथ चरित्र (संस्कृत)
(५) „ „ १४१२ भावदेव सूरि „ „ „ „
[डा० ब्लूम फिल्ड इसका अनुवाद अंग्रेजी में किये हैं।]
(६) „ „ १६३२ हेम विजयगणि कृत पार्श्वनाथ चरित्र (सं०)
(७) „ „ १६५४ उदयवीर गणि कृत पार्श्वनाथ चरित्र (सं०)
(८) „ „ विजयचन्द्र कृत पार्श्वनाथ चरित्र (संस्कृत)
(९) „ „ सर्वानन्द „ „ „ „

दिगम्बर सम्प्रदाय मे भी पार्श्वनाथ स्वामी के कई जीवन चरित्र मिलते हैं। उनमे से वादिराज कृत पार्श्वनाथ चरित्र माणिक्यचन्द्र

दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति से प्रकाशित हुआ है और पार्श्वनाथ नामक ग्रन्थ का भूधर-कवि द्वारा रचित भाषानुवाद भी सूरत से प्रकाशित हुआ है।

अन्यान्य धर्मावलम्बियो की तरह जैनियो ने भी अपने आराध्य तीर्थंकरों की नाना प्रकार स्तुति स्तवनादि की रचना की है। यह प्रथा प्राचीनकाल से लेकर अब तक चली आ रही है परन्तु अन्यान्य तीर्थंकरों की अपेक्षा भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति, स्तोत्र, कविता. भजनादि अधिक परिमाण मे मिलते हैं। चाहे पुराने काल के प्राकृत या संस्कृत के स्तोत्रादि हो अथवा देशी भाषाओ के लिखे हुये भांति भांति के भक्ति रस पूर्ण पद्य, सभी मे भगवान् पार्श्वनाथ के नाम की प्रधानता है। इसलिये भगवान् पार्श्वनाथ को जैन धर्म का मेरुदण्ड कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति नही होगी। कल्पसूत्र मे उनको पुरुष-प्रधान विशेषण से विभूषित किया गया है। जनसाधारण में भी भगवान पार्श्वनाथ का जितना नाम प्रसिद्ध है उतना किसी अन्य तीर्थंकर का नही। हजारीबाग जिले मे जैनियो का प्रसिद्ध सम्मेत शिखर नामक जो तीर्थ है उस पर्वत पर २४ तीर्थंकरों में से २० तीर्थंकरों ने निर्वाण लाभ किया था। इस घटना का उल्लेख श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ग्रन्थो मे है। अन्य तीर्थंकरों के नाम से यह पहाड़ प्रख्यात न होकर भगवान् पार्श्वनाथ के ही नाम से आजकल 'पारस नाथ पहाड़' पुकारा जाता है। अजैनलोगों की धारणा है कि भगवान् पार्श्वनाथ ही जैनियो के एकमात्र आराध्य देव हैं और यह विश्वास ऐसा दृढ़ हो गया है कि वे किसी जैन मन्दिर को पारसनाथ का ही मन्दिर कहते हैं। उदाहरणार्थ कलकत्ते के मानिकतला में हलसी बगान स्थित स्वर्गीय राय बद्रीदास बहादुर वगैरह द्वारा बनवाये हुए जैन मन्दिर पारसनाथ के मन्दिर के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। परन्तु उनमें भगवान् पार्श्वनाथ का एक भी मन्दिर नहीं है। इन मन्दिरों मे पहिला मंदिर ८ व तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ, दूसरा

१० वे तीर्थंकर श्री शीतल नाथ और तोसरा २४ वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का हैं। वैसे ही इस नगरी के वड़ा बाज़ार स्थित काटन स्ट्रीट के जैन मन्दिर से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को जो प्रतिवर्ष रथ यात्रा निकलती है वह महोत्सव पारसनाथ के ही नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इस रथोत्सव मे १५ वें तीर्थंकर भगवान् धर्मनाथ की प्रतिमा पूजी जाती है। भारतवर्ष के उत्तर, पश्चिम और गुजरात प्रान्त के प्रसिद्ध नगर और जैन तीर्थों मे जहां जहा हमें जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वहां प्रायः सर्वत्र ही हमे भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर देखने मे आये है। जिस प्रकार हिन्दुओं का शिवलिङ्ग या शिवमूर्ति भिन्न भिन्न स्थानो मे विभिन्न विशेषणो से सम्बोधित होती है उसी प्रकार श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति भी अनेक स्थानो मे भिन्न भिन्न नामों से पुकारी जाती है और पूजी जाती है। इस तरह भिन्न भिन्न नामों की पार्श्वनाथ की मूर्ति की संख्या भी सेकडो है। उनमे से कुछ प्रसिद्ध मूर्तियोकी नामावलि पाठको के सामने उपस्थित कर हम निबन्ध समाप्त करेंगे।

जैनियो के उपास्य तीर्थंकरो मे क्यों केवल पार्श्वनाथ ही सैकड़ो नामों से अलंकृत होकर पूजे जाते हैं इस का रहस्य आज तक प्रकाशित नही हुआ। भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य परंपरा मे रत्नप्रभ सूरि ने राजपूताना स्थित ओशियाँ नामक नगर मे अनेक राजपूतो को जैन धर्म में दीक्षित किया था वे ही आगे चल कर ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुए इसी ओसवाल वंशमें इतिहास प्रसिद्ध जगत् सेट हुए थे और ओसवाल लोग आज भी वाणिज्य व्यवसाय मे लीन होकर भारत मे सर्वत्र फैले हुए हैं। जैनियो में ओसवाल और श्रीमाल दूसरे तीर्थंकरों की अपेक्षा भगवान् पार्श्वनाथ मे अधिक श्रद्धा भक्ति रखते हैं।

हमारे विचार से श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन लोग भगवान पार्श्वनाथ की पूजार्चना जिस प्रकार करते है वैसी दिगम्बर सम्प्रदाय मे

नहीं पाई जाती। यद्यपि दिगम्बरी जैन वर्तमान काल मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ के मन्दिरों मे पूजा करते हैं तो भी उनके पार्श्वनाथ की मूर्ति का श्वेताम्बरियो की तरह भिन्न २ नामों से पूजार्चना करने का प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। भगवान् बुद्धदेव की जीवनी के सम्बन्ध मे विभिन्न भाषाओं मे अनेकों छोटी बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु यह बड़े दुःख का विषय है कि आज तक पीछे उल्लिखित पुस्तको को छोड़ कर किसी जैन या अजैन लेखको द्वारा रचित गवेषणापूर्ण भगवान् पार्श्वनाथ का कोई भी जीवन चरित्र नहीं दृष्टि गोचर होता। आशा हैं कि पुरातत्त्वविद् विद्वान् गण इस महापुरुष के जीवन सम्बन्धी सभी उपलब्ध तथ्यों का संग्रह कर एक महत्त्व पूर्ण ग्रंथ की रचना द्वारा इस बड़े अभाव की यथा शक्ति पूर्ति करेंगे।

(श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ की आकारादि क्रमानुसार भिन्न २ नामो की सूची पाठक 'पार्श्वनाथ और शंकरनाथ' मे देख।)

"प्रभात"—सचित्र उत्सवाङ्क वर्ष २. संख्या ३-४. (अप्रैल-जुलाई १९३० पृ० ५५-६१)

जैन धर्म में शक्ति-पूजा

शक्ति की उपासना का यदि वाह्य रूप लिया जाय तो वह जैन-धर्म मे नहीं है। हिन्दू अथवा बौद्ध-तन्त्रों मे शक्ति का जो स्वरूप मिलता है वह जैन-धर्म के सिद्धान्तो मे नहीं पाया जाता। आत्मा की जो सहज स्वाभाविक शक्ति है और जो अनन्त कही गयी है, उसकी अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। इसके तीन स्वरूप हैं—सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। और इन तीनों की अभिव्यक्ति के प्रकार भी असंख्य हैं। यही जब अलौकिक रूप धारण कर लेती हैं तब उन्हें शास्त्रीय भाषा मे 'लब्धि' अथवा चमत्कार कहते हैं।

हिन्दू-धर्म के अनुसार 'शक्ति' ईश्वरत्व का सर्वोच्च स्वरूप है—इसे ही प्रकृति का व्यक्त-साकार स्वरूप समझिये अथवा ईश्वर की सर्व व्यापक शक्ति समझिये। शक्ति-उपासना के विधि-विधानो का निर्माण तो बहुत पहले ही हो चुका था और अथर्ववेद के समय से ही हम शाक्त-धर्म अथवा आगम-सम्प्रदाय का आविर्भाव पाते हैं। धीरे-धीरे हिन्दू-धर्म से यह मत बौद्ध-धर्म मे प्रवेश कर गया और आगे चलकर कुछ अंशो मे जैन-धर्म के मतावलम्बियो पर भी इसने कुछ प्रभाव डाला। तन्त्र-शास्त्र के सिद्धान्तो तथा साधन का इतना अधिक प्रचार हुआ कि प्रायः सभी धर्म और सम्प्रदायो पर इसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। परन्तु जैन धर्ममे 'आगम-सम्प्रदाय' जैसी कोई वस्तु नही है।

हिन्दू धर्म तथा बौद्ध-धर्म मे पुरुष और स्त्री शक्ति का 'महाशक्ति'

रूप में जो विचित्र वर्णन मिलता है, वह जैन-धर्म मे नहीं है। जैन-शास्त्र पृथ्वी के ऊपर और नीचे के देवी-देवताओके निवास तथा श्रेणियो का वर्णन करते हैं। उनकी पूजा-अर्चा और वरदान से सभी प्रकार के सांसारिक उद्देश्यों और कामनाओंकी पूर्ति हो सकती है—ऐसा माना गया है। जैन-धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायो मे शक्ति-उपासना का यही रूप है।

यक्ष और यक्षिणी, योगिनी, शासन देवी तथा अन्य देवियो की उपासना-अर्चा के अनेक रूप जैन-धर्म मे प्रचलित है और इन शक्तियो का आवाहन सामान्यतया मन्दिरो की प्रतिष्ठा और मूर्त्तियो की स्थापना अथवा किसी तप-अनुष्ठान के प्रारम्भ और समाप्ति मे किया जाता है।

शक्ति-उपासना का विधान तन्त्रों में मिलता है और हिन्दू-धर्म तथा बौद्ध-धर्म मे तन्त्र साहित्य का भरपूर भण्डार मिलता है। परन्तु जैन-धर्म मे एक भी तन्त्र नही मिलता। 'शक्ति' का दर्शन यन्त्रो मे और श्रवण मन्त्रो में होता है और भिन्न भिन्न संकेतो और रूपो में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। जैन-धर्म मे भी ऐसे यन्त्रो और मन्त्रो की कमी नही है, परन्तु शक्ति-उपासना को किसी प्रकार प्रोत्साहन अथवा समर्थन नही मिलता। वरं जैन धर्म मे 'शक्ति-पूजा' का प्रचार उठ रहा है।

'कल्याण' 'शक्तिअङ्क' वर्ष ६ संख्या १ (अगस्त १९३४) पृ० ५६५,

पार्श्वनाथ और शंकरनाथ

एक बार मुझे लखनऊ के स्वर्गीय लाला चुन्नीलालजी साहब की कृपा से एक प्राचीन कोष्ठक (चार्ट) देखने को मिला था। यह कोष्ठक बहुत बड़ा कई फीट लम्बा था और उसमे जैन धर्म के चौबीसो तीर्थंकरो के १७२ बोल क्रमानुसार लिखे हुये थे। कोष्ठक मे खाने बनाकर प्रत्येक तीर्थंकर के आविर्भाव से लेकर उनके मोक्ष प्राप्ति के समय तक की गणना और बाते दिखाई गई थी। इन खानो मे से एक खाने मे प्रत्येक तीर्थंकर के समय के प्रचलित धर्म दिखाये गये थे। जैन धर्म का, दूसरा शैव धर्म का और तीसरा सांख्य का नाम था।

इससे प्रकट होता है कि जैनियों के मतानुसार भी शैव धर्म अत्यन्त प्राचीन है। शिव या महादेव की पूजा इस देशमे कब से हो रही है, इसका पता इतिहास भी नही बता सकता। 'कल्याण' के 'शिवाङ्क' मे प्रकाशित 'बृहत्तर भारत में शिव' नामक प्रबन्ध से प्रकट होता है कि महेनजोदड़ो की खुदाई बाद से इतिहासज्ञ यह मानने लगे है कि भारत मे आर्यो के आगमन के पहले से ही शिव-पूजा प्रचलित थी। दक्षिण भारत मे ईसा से दो शताब्दी पूर्व की प्रतिष्ठित शिव मूर्त्ति आज भी विद्यमान है। कुशाण और गुप्त काल की अनेक शिव मूर्त्तियो का पता चलता है। कुशाण युग के सिक्को पर भी शिव चित्र मिलता है।

शिव-पूजा भारत के उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम प्रत्येक प्रान्त में पाई जाती है। इतना ही नहीं, वरन् भारत के बाहर सुमात्रा जाभा, बाली, कम्बोडिया, मलाया आदि स्थानों मे भी, जहा जहा

हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति गई वहां वहां भी शिवोपासना प्रचलित हुई। इन स्थानों में आज भी अनेक शिव मूर्त्तियां मौजूद हैं।

जैन धर्म और हिन्दू धर्म का तुलनात्मक अध्ययन करते हुये मुझे यह विचित्र बात दीख पड़ी कि हमारे तेईसवें भगवान् श्री पार्श्वनाथ और हिन्दुओं के भगवान् शंकर में कई बातों में समता है।

पहली बात यह है कि जिस प्रकार हिन्दुओ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनो मुख्य देवताओं में सब से अधिक पूजा शिव की होती है, उसी प्रकार जैनियों के चौबीस तीर्थंकरो में सब से अधिक श्री पार्श्वनाथ ही पूजे जाते हैं।

काशी शिवजी की प्रधान पुरी है। इसलिये वह हिन्दुओं का महान तीर्थ स्थान है। प्रति वर्ष लाखों तीर्थ यात्री भगवान् विश्वनाथ के दर्शन के लिये काशी आते हैं। जैनियों के भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म स्थान भी काशी ही है। श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनो सम्प्रदाय के हजारों यात्री वाराणसी को पवित्र तीर्थ स्थान समझकर आते जाते रहते हैं।

तीसरी बात यह है कि शिवजी की मूर्त्तियों मे सर्प बहुतायत से बनाया जाता है। कुछ शिव मूर्त्तियों के गले में सर्प माल दीख पड़ती है और बहुतो के मस्तक पर सर्प के फनों के छत्र मिलते है। इसी प्रकार श्री पार्श्वनाथ की मूर्त्तियो के मस्तक पर भी सर्प के फनो के छत्र मिलते हैं।

चौथी और अर्थ पूर्ण बात यह है कि जिस प्रकार जैन लोग मंदिर की वस्तुओं को देव द्रव्य समझकर अपने काम में नहीं लाते है उसी प्रकार शिवजी की पूजा में चढ़ी हुई वस्तुओं को निर्माल्य समझ कर हिन्दू लोग भी व्यवहार नहीं करते और इसलिये शिवजी का प्रसाद कोई नहीं ग्रहण करता। यह बात शंकरजी के अतिरिक्त अन्य किसी देवता पर लागू नहीं है।

एक ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने श्री पार्श्वनाथ की स्तुति मे "कल्याण मंदिर" स्तोत्र रचकर उज्जयिनी के 'महाकाल शिव' के मन्दिर में पढ़ा था उस पर शिव लिंग फट गया और उसमें से पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई, जो आज तक 'ऐवंति पार्श्वनाथ' के नामसे प्रसिद्ध है।

सब से महत्व पूर्ण बात यह है कि जैसे शंकरजी को पूजा अलग २ स्थानों मे अलग २ नामों से होती है। ठीक इसी प्रकार श्री पार्श्व-नाथ की पूजा विभिन्न स्थानो में सैकडों विभिन्न नामो से होती है। 'काठमांडू' के शिवजी 'पशुपतिनाथ' के नाम से, काशी के 'विश्वनाथ' के नाम से, काश्मीर के 'अमरनाथ' के नाम से पूजे जाते हैं। श्री पार्श्वनाथ की पूजा भी विभिन्न स्थानो मे विभिन्न नामो से होती है। जैसे 'अन्तरीक्ष', 'चिन्तामणि', 'संखेश्वर', 'कलिकुंड' आदि।

यहां पर मैं विभिन्न स्थानो के भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् शंकरनाथ के नामो की कुछ सूची देता हूं, जिससे पाठकों को इन दोनो जैन और हिन्दू देवताओं की ऐसी विचित्र समता का अंदाज लग सकेगा।

नाम और स्थानों की सूची

पार्श्वनाथ	स्थान	शंकरनाथ	स्थान
१ अंजारा	काठियावाड़	१ अचलेश्वर	आबू, जोधपुर
२ अंतरीक्ष	वरार	२ अमरनाथ	काश्मीर
३ अमीझरा	गिरनार	३ ओंकारनाथ	नासिक
४ ऐवन्ति	उज्जैन	४ एक लिंग	मेवाड
५ करेरा	मेवाड	५ कपिलेश्वर	राजगिर
६ कलिकुण्ड	कम्बे	६ केदारनाथ	हिमालय

पार्श्वनाथ	स्थान	शंकरनाथ	स्थान
७ कलकंठ	पाटन	७ कोटेश्वर	भुज
८ कल्याणी	पालनपुर	८ कुम्भेश्वर	कुम्भकोनम्
९ कन्सारी	कैम्बे	९ गोकर्ण	लखीमपुर
१० कम्बिया	गुजरात	१० गोपेश्वर	मथुरा
११ कापड़ा	मारवाड़	११ गोतमेश्वर	कुम्भकोनम्
१२ किकला	पाटन	१२ गुप्तेश्वर	वृन्दावन, कानपुर,
१३ काक	"		जबलपुर
१४ कोका	कैम्बे	१३ जम्बूकेश्वर	काची
१५ केशरिया	पालनपुर	१४ जालेश्वर	जलपाईगुडी
१६ खोखला	गुजरात	१५ तारकेश्वर	हुगली
१७ गम्भारी	"	१६ त्र्यम्बकेश्वर	नासिक
१८ गौड़ी	अजमेर, पाली,	१७ दर्शनेश्वर	अयोध्या
	उदयपुर	१८ दुग्धेश्वर	रुद्रपुर
१९ घृतकल्लोल	कच्छ, बम्बई	१९ नीलेश्वर	पटना
२० चम्पा	पाटन	२० नागेश्वर	कुम्भकोनम्
२१ चिन्तामणि	पाटन, लखनऊ		अयोध्या
	आगरा, मेड़ता,	२१ नीलकण्ठ	कालींजर, प्रयाग,
	सादड़ी, जैसलमेर,	२२ पशुपतिनाथ	नेपाल
	मुर्शिदाबाद	२३ पिप्पलेश्वर	मथुरा
२२ जग वल्लभ	अहमदाबाद,	२४ पञ्चवक्त्रेश्वर	हरिद्वार
	मेवाड़	२५ वटेश्वर	सिकोहाबाद
२३ जीराउला	सिरोही, अहमदाबाद	२६ बानेश्वर	कुम्भकोनम्
२४ टांकला	कैम्बे	२७ बाल्केश्वर	बम्बई
२५ दादा	बड़ौदा	२८ वराहेश्वर	विन्ध्याचल
		२९ भूतेश्वर	मथुरा
२६ नवखण्डा	पाटन, घोघा	३० भुवनेश्वर	उड़ीसा, चित्रकूट
२७ नव पल्लव	कैम्बे	३१ मन महेश	पठान कोट

पार्श्वनाथ	स्थान
२८ नव रंग	पाटन
२९ नवलक्षा	पाली
३० नाकोड़ा	मेवाड़
३१ पंचासरा	गुजरात
३२ पल्लवीया	पाटन
३३ फलवर्द्धि	मारवाड़
३४ बरकाना	"
३५ भद्रावती	बरार
३६ भीड़भजन	ऊणा, खेड़ा
३७ मक्शी	ग्वालियर
३८ मन-मोहन	पाटन
३९ मनरगा	महिसाना
४० मुनि	पाटन
४१ लोढ़न	डभोई
४२ लोद्रवा	जैसलमेर
४३ विजय-चिन्तामणी	अहमदाबाद
४४ शेषफण	जूनागढ़
४५ शखेश्वर	गुजरात
४६ सहस्रकूट	पाटन
४७ सहस्रफण	,, जोधपुर
४८ सांवलिया	पाटन
४९ सोम चिन्तामणि	कैम्बे
५० स्तम्भन	पाटन

शंकरनाथ	स्थान
३२ महाकाल	उज्जैन
३३ मुक्तेश्वर	गोरखपुर
३४ मार्कण्येश्वर	पुरी
३५ मत्स्येश्वर	लङ्का
३६ माधवेश्वर	मानसरोवर
३७ रंगेश्वर	मथुरा
३८ रामेश्वर	सेतुबन्ध
३९ रूपनाथ	श्रीहद
४० वैद्यनाथ	सौंताल परगना, काँगड़ा
४१ विश्वनाथ	काशी
४२ बृहदीश्वर	तंजोर
४३ वामनेश्वर	कुरुक्षेत्र
४४ वीरश्वर	इडर
४५ सिद्धान्त	राजगिर, साहाबाद
४६ सोमनाथ	काठियावाड़
४७ सम्मिदेश्वर	चित्तौड
४८ सर्वेश्वर	कुरुक्षेत्र
४९ सङ्गमेश्वर	त्रिवेणा
५० हायलेश्वर	हाले विद

'सुधा' वर्ष ६, खंड १, संख्या ५ (दिसम्बर, १९३५) पृ० ५३५-५३८

जैसवालों की उत्पत्ति पर विचार

जैनियों के सर्वज्ञ वचनानुसार यह संसार क्षण २ मे परिवर्त्तनशील है। जब हम स्वयं केवल साठ सत्तर वर्ष की ही अवस्था में नाना प्रकार के हेर फेर देखते हैं तब सैकड़ो नही सहस्रों वर्ष की बात में परिवर्त्तन होना सर्वथा सम्भव है। आज भारतवासी वर्त्तमान सरकार के इस शांतिमय राजत्व के समय अपने २ धर्म इतिहास आदि के खोज में तत्पर हैं। मुझ को जहां तक ज्ञान है जैनियो के इतिहास का ऐसा अध्याय, कि जिस मे पूर्वाचार्यों ने कौन समय किस स्थान में किस २ जाति को अहिंसा का उपदेश देकर जैनी बनाया, इसका वर्णन ठीक २ नही मिलता है। किस कारण से उन लोगोने इस विषय को अन्धकार मे ही रहने दिया इसका भी पता हमे अभी तक नहीं लगा है। जन-प्रवाद और किम्वदन्तियों को बिलकुल ही असत्य समझ कर दूर कर देना भी बहुत कठिन है बल्कि बहुतसा ऐतिहासिक तत्व उन्ही प्रवादो और किम्वदन्तियो से हो पाया जाता है। चतुर्विध संघ के साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका के विषय मे प्राचीन भण्डारों के अगले पत्र अथवा कुछ प्राचीन ताम्र शासन या शिला लेखो के सिवा कोई क्रमवार इतिहास का आज तक पता नही मिला है। जो कुछ पुस्तकाकार मे इस विषय पर छपे हैं और मेरे देखने मे आये हैं वे सब अधिकाँश में विश्वस्त प्रमाणो पर लिखे हुए नहीं ज्ञात पड़ते और बहुत सो अत्युक्तियों से भरे हुए हैं। ऐसी अवस्था में मैंने ऐसे विषयों से अलग रहना ही उचित समझा था। परन्तु हमारे इस "जैसवाल जैन" पत्र के सुयोग्य सम्पादक महाशय की आज्ञानुसार मैंने अपने को

एक विचार पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का साहस किया है। आशा है कि सुज्ञ पाठक इसे क्षीरनीरवत् अङ्गीकार करेंगे। भविष्य में हमारे भी जो और नये विचार होवेंगे उन्हे पाठकों की सेवा मे उपस्थित करूंगा।

इस पत्र के प्रथम वर्ष के १०—११ संख्या के २८२ पृष्ठ से ८६२ पृष्ठ तक के "जैसवालों का प्रादुर्भाव" शीर्षक लेख में "जैसवालो" का जो हाल लिखा है मैं उस लेख से सहमत नही हो सकता। लेखक महाशय ने पूर्ण गवेषणा करके ही विचार पूर्वक लिखा होगा। परन्तु चाहे मेरा विचार भ्रम हो चाहे उनका भ्रम हो इस के लिये कोई भी सोच नहीं है। परन्तु जहां तक सम्भव हो असली तत्व को प्रकाश करना और पूर्व भ्रम को दूर करना ही ऐसे खोजों का मूल सिद्धान्त समझना चाहिये। उस लेख में लिखा है कि "जैसवाल" क्षत्री है और शेर का बच्चा और भेड़ियों के दृष्टान्त से उन लोगों का वैश्य कहलाना बताया है। दूसरी बात यह है कि उस लेख में लिखते हैं कि दक्षिण में "जैसनेर" नाम का स्थान था। उस देश का राजा इक्ष्वाकु वंश का क्षत्री था। उसी के कुटुम्बी जैसनेर वाले कहलाते थे। जो कि धीरे धीरे पीछे बिगड़ कर जैसवाले या जैसवाल कहलाने लगे। "बीकानेर से युक्ति वारिधि उ० श्री रामलाल जी गणि ने "महाजन वंश मुक्तावली" नामक एक पुस्तक छपवाई है। उस पुस्तक के १६४ पृष्ठ में मध्य देश के "८४ वणिक" जातियों के नाम के ३० संख्या में "जैसवाल" का नाम लिखते हैं। उसी मे नं० ३० में 'जायलावाल' नाम है और उक्त 'जायलावाल' जायल स्थान से कहलाने का हवाला है। परन्तु जैसवाल के विषय मे उस पुस्तक मे कुछ हाल नहीं लिखा है कि वे वैश्य हैं या क्षत्री। जैनियो के सर्व साधारण जाति निरूपण में जो [illegible] [illegible] स्थान प्रचलित होते हैं उनमें 'जैसवाल' का नाम नहीं पाया जाता है। अतएव मुझे यह बात अच्छी तरह ज्ञात है कि यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] खास विशेष और पुस्तक विशेष में भी [illegible]

हेर फेर हैं। परन्तु किसी में भी मुझे यह नाम मिला नहीं। यति श्रीपालजी ने "जैन सम्प्रदाय शिक्षा" नाम की जो पुस्तक छपवाई है उसके ६८५ पृष्ठ में मध्यप्रदेश (मालवा) की बारह न्यातों में संख्या ६ मे "जैसवाल" नाम हैं और उसी पुस्तक के ६८७ पृष्ठ मे चौरासी न्यात और उनके स्थानों के वर्णन में ३२ संख्या में "जैसवाल गढ़" से "जैसवालों" की उत्पत्ति लिखी है। उसीके ६८८ पृष्ठ में पुनः दक्षिण प्रान्त की ८४ न्यातो के नामो मे संख्या ५ में "जैसवाल" नाम पाया जाता है। मुझको जोधपुर (मारवाड) में वहां के यतियों के पास जो ८४ जाति श्रावको के नाम मिले हैं उसमें नं० १६ में "जायलावाल" नाम है। इस विषय पर जितनी हस्तलिखित या छापे की पुस्तकें हमारे दृष्टिगोचर हुई हैं किसी में भी "जैसवाल" जैनियों का क्षत्री या राजपूत से जैनी होना नहीं पाया गया है। यदि कोई महाशय यह सोचें कि हमारा स्थान क्षत्रियों से उठा कर एक क्रम नीचे वैश्यो में करना ठीक नहीं उनसे मैं विनय पूर्वक कहना चाहता हूं कि अपने जैनियो मे हिन्दुओं की भांति वर्णभेद नहीं माना गया हैं। श्री ऋषभ देव आदि तीर्थंकरो के समय से ही सब मनुष्य एक थे। पश्चात् "असिजीव" "मसिजीव" आदि अर्थात् क्षत्रिय वैश्य कहलाने लगे। तथा अपने जैनियो के धर्मानुसार "जातिमद" "कुलमद" आदि पापों की गणना में हैं। इस कारण सुज्ञ पाठक तत्व को अन्वेषण करते हुये उच्च नीच का विचार न लावेंगे। मूल विषय पर ध्यान देने से यह सम्भव जान पड़ता है कि जैसे ओसिया से ओसवाल भीनमाल से श्रीमाल, खंडेले से खंडेलवाल, बघेरा से बघेरवाल आदि हुये हैं उसी तरह चाहे मालवा चाहे राजपुताना के जैसलगढ या और कोई उसी तरह के नाम के स्थान से "जैसवाल" शब्द की उत्पत्ति हुई हो परन्तु दक्षिण के जैसलनेर से होना कदापि सम्भव नहीं है। मुझे जहां तक ज्ञात है वर्त्तमान या प्राचीन काल मे दक्षिण के किसी भी स्थान के नाम के अन्त में "नेर" नहीं पाया जाता। राजपुताना में ही ऐसे नाम पाये जाते हैं जैसे "गजनेर" "बीकानेर" इत्यादि।

मैं पुरातत्व विषय के खोज मे जो कुछ संग्रह कर सका हूं उसमें हमारे इस "जैसवाल जैन" के विषय में दिल्ली में नवघरे के मन्दिर में एक सर्व धातु की प्रतिमा पर सं० १५०४ का लेख पाया है जिसमें इस प्रकार लिखा है :—

सं० १५०४ वर्ष आ० सु० ६ श्री मूलसंघे भ० श्रीजिनचन्द्र देवः जैसवालान्वये सा० लर भार्या रैनसिरि तत्पुत्र सोनिग भार्या पेमा प्रणमति।" (१)

और पटने (पाटलिपुत्र) के जैन मन्दिर में सं० १९१० का निम्नलिखित लेख पाषाण को मूर्त्ति पर मौजूद है :—

"श्री सं० १९१० शाके १७७५ साल मिती वैशाख शुक्ल पञ्चम्यां गुरौ पाटली-पुरसर जिनालय पूर्वक श्री श्री नेमनाथ मन्दिरजी जैसवाल माणकचन्द तत्पुत्र मटरूमल तत्पुत्र सोवनलाल प्रतिष्ठा कारायितु श्रीरस्तु ॥" (२)

इस से यह बात निश्चित है कि "जैसवाल" यह नाम कुछ नया नहीं है। साढ़े चार सौ वर्ष से भी अधिक समय से इसका अस्तित्व पाया जाता है और दिगम्बरी आचार्योंने ही जहा तक सम्भव है इन लोगों को प्रतिबोधित किया है। मैंने अन्दाज दो हजार जैन लेख संग्रह किया है तिस में उपरोक्त केवल दो लेखों के और कोई जैसवालो के प्रतिष्ठित प्रतिमा अथवा शिलालेख नहीं पाया। इस से यह भी सिद्ध होता है कि उनकी संख्या अधिक नहीं थी। चारण और भाटों के पास जो वंशावली मिलती है उसमें अधिकांश ओसवालों का ही वर्णन मिलता है और उन लोगों को क्षत्रिय राजपूत से जैन होनेका सन्तोषदायक प्रमाण भी मिलता है। उपर्युक्त दो एक विचारों से जैसवालों की उत्पत्ति का आगे पर खोज करने के प्रबन्ध में थोड़ा भी सहारा पहुँचेगा तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

---

(१) जैन लेख संग्रह प्रथम खण्ड पृ० १९२ नं० ४०२ ।

(२) जैन लेख संग्रह, प्रथम खण्ड पृ० ८२ नं० ३२८ ।

समय पुरुष बलवान

एक प्रबल पराक्रांत विजयी सम्राट् की तरह समय सदाकाल अपना आधिपत्य विस्तार कर रहा है। यह किसी का दास नहीं है। जगत के सर्वस्थानों के सर्व जीवों पर इसका शासन अखण्ड विद्यमान है। चाहे तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, शिशु चाहे युवक कोई भी क्यों न हो, समय की गति के अवोध्य करने को कोई समर्थ नही। समय ही एक अनादि अनन्त ऐसा पदार्थ है जिसका स्थान जैनियो के शास्त्र मे विलक्षण रूप से वर्णित है। जैनागम के स्थान २ पर तेणं कालेणम् तेणं समयेणम्' का उल्लेख मिलता है। जो विषय स्वप्न के अगोचर था वह समय के ही कारण प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि के सम्मुख मूर्त्तिमान उपस्थित है। यदि संसार मे कोई भी अमूल्य और अतुलनीय पदार्थ का ज्ञान सर्वोत्कृष्ट समझा जाय तो समय का नाम ही सर्वप्रथम रहेगा। काल की अज्ञानता के कारण ही मनुष्य को समय २ पर हताश होना पड़ता है। समय का पूर्ण रूप से महत्व जानने के पश्चात् कार्य मे अग्रसर होने से ईप्सित फल मिलने में सन्देह नहीं रहता। आज यदि हमारे नवयुवक भाई समयानुकूल अपना संगठन, विद्याभ्यास और व्यापारिक चर्चा मे तत्पर रहें, गुरुजन समयानुकूल देशोन्नति, समाजोन्नति पर ध्यान दे और धर्माचार्य साधुलोग समयानुकूल धर्मोन्नति के पथ-प्रदर्शक बनें तो आज हम भारत के और २ समाजो के साथ ही नही वरं उनसे भी कहीं आगे बढ़ सकते हैं। यदि लकीर के फकीर होकर सदा समय के मूल्य को तुच्छ ही समझते रहेंगे तो हमलोग धार्मिक, व्यापारिक, अथवा सांसारिक किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकेंगे। एक समय में ही इतनी शक्ति है जो

असंभव को संभव बना सकता है। इसी कारण मैं प्रथम ही कह चुका हूं कि हमारे जैन शास्त्रों मे समय को बहुत उच्च स्थान दिया गया है। चाहे पुरातत्व देखिये चाहे नव्य इतिहास अवलोकन कीजिये आपको प्रत्येक मे समय का झलकता हुआ चित्र दिखाई पड़ेगा। इसलिये जो व्यर्थ कार्यों मे अपने समय, शक्ति और अर्थ व्यय करते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। आज हमारे देशमें किस वस्तु की विशेष आवश्यकता है, आज हमे कैसी शिक्षा दी जानी चाहिये, आज किस ढङ्ग के व्यापार से द्रव्योपार्जन कर सकते हैं, आज किस विधि से हम धर्म पालन कर सकते हैं इत्यादि विचार यदि समयानुकूल न होंगे तो हमारी समस्त शक्ति नष्ट होगी। अतएव हमारे नवयुवको का प्रथम कर्त्तव्य यही है कि समय के महत्व को अपने अन्तःकरण में सदा स्मरण रखें।

एक समय था कि हमारे ओसवाल भाइयो के द्वार पर वृटिश सरकार के प्रतिनिधि साक्षात् करने के लिये अपेक्षा किया करते थे और आज एक समय है कि उसी सरकार की आधीनता मे ओसवाल भाइयों का स्थान भारतीय अन्य कौमों के बहुत पीछे है। यदि मनुष्य समय का ज्ञान सम्यक् प्रकार उपलब्ध करके यथासमय कर्मक्षेत्र मे अग्रसर होवें तो असम्भव को भी अनायास से प्राप्त करने को समर्थ हो सकता है। एक समय था जब कि मुसल्मानों के अत्याचारों के कारण हिन्दू ललनाओ के मान मर्यादा की रक्षा करनी कठिन हो गई थी। स्त्री शिक्षाके विषय में तो कहना ही क्या, बालिकाओ को अन्तःपुर से बाहर भेजना भी संकटपूर्ण था। आज एक समय है कि प्रत्येक समाज मे स्त्री शिक्षा अत्यावश्यक समझी जाती है। यदि समय की अज्ञानता के कारण हमने पूर्ण लाभ न उठा सके तो समय परिवर्तन होनेपर जो कुछ त्रुटियां रह जांयगी वे कदापि पूर्ण न हो सकेंगी और समाज के लिये हानिकारक तथा कष्टदायक हो जायगी। अतः विशेष रूप से हमारे युवकों को उचित है कि सदार

क्षेत्रमें समय को सर्वश्रेष्ठ स्थान दें और इसी बलवान पुरुष की छाया में रहते हुये कर्मक्षेत्र में अग्रसर होकर अपने धर्म, समाज और वंश का मुखोज्ज्वल करें।

देखिये! जिन मुसलमानों के भाव परदे के विषय में इतने कट्टर थे, यह समय की ही खूबी है कि उनलोगों के भी विचारो मे आज परिवर्त्तन दिखाई पड़ते हैं। यहां तक कि आफगानिस्तान के अमीर अमानुल्लाह भी इस प्रथा के घोर विरोधी हैं। इसी प्रकार और २ विषयों मे भी अपना विचार समयानुकूल कर लेना चाहिये।

पाठक स्थिरचित्त से किसी भी ओर ध्यान देंगे तो समय का प्राधान्य ही दृष्टि-गोचर होगा। आज यद्यपि आपका प्राप्य अक्षरशः सत्य है तौभी राजद्वार मे निर्दिष्ट समय के उपरान्त उपस्थित होने से आपको कुछ भी फल न मिलेगा। अवसर से चूकने पर केवल पश्चा-ताप ही रह जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी समय के ऊपर कैसी अच्छी शिक्षाप्रद कविता लिखी है 'का बरषा जब कृषी सुखाने, समय चूक पुनि का पछिताने'।

अतः नवयुवकों से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि वे किसी प्रकार आलस्य मे अथवा प्रमाद मे डूब कर समय को नष्ट न करें, अवसर हाथ से न जाने दें तथा उसकी उपेक्षा न करें।

'ओसवाल-नवयुवक'—युवकांङ्क वर्ष २, संख्या १ (अप्रैल १९२९) पृ० ३६-३७

ओसवाल समाज का अग्निकुण्ड

मैं भी इस विषय पर दो अक्षर लिखने का साहस कर रहा हूं। सहृदय पाठक यह न समझें कि मैं अपनी प्रशंसा, अथवा रौप्यपदक प्राप्तिकी आशा से यह लिख रहा हूं, बल्कि ओसवाल नवयुवकों के सन्मुख अपना विचार प्रगट करना एक कर्त्तव्य सोच कर ही कुछ लिखना उचित समझता हूं। इससे यदि विचारशील पाठक कुछ भी सार ग्रहण करेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

देखिये, "ओसवाल समाजका अग्निकुण्ड" इस शीर्षक में 'ओसवाल-समाज' गुणवाचक है और 'अग्निकुण्ड' मुख्य शब्द है जिसका अर्थ स्पष्ट है। जिस कुण्ड में अग्नि विद्यमान है उसमें किसी को भी कुछ प्राप्ति की आशा नहीं रहती है—सब स्वाहा हो जाता है। जब तक किसी दूसरे की सहायता से उस अग्निकुण्ड से अलग न हो सकेंगे तब तक बचने की आशा दुर्लभ है। उस अग्निकुण्ड को शीतल कर दिया जाय अथवा पूर्ण रूपसे ध्वंस कर दिया जाय तब ही समाज की रक्षा हो सकती है। ओसवाल नवयुवक समिति के पत्र के नान्दीमुख (सिंहावलोकन) से ही यह विषय छिड़ा हुआ है। पश्चात् कई संख्याओं में कई एक सज्जन इस विषय पर अत्युत्तम मर्मस्पर्शी प्रबंध लिखते आये हैं; किन्तु इस गहन विषय पर उन लोगों से शायद पूर्ण रूपसे सन्तोष नहीं हुआ होगा इसी कारण 'प्रतियोगिता' में पुनः यही विषय रक्खा गया है। अब यह समस्या उपस्थित हुई कि वह कौन सा महा 'सर्वनाशी' ऐसा धधकता अग्निकुण्ड है जिसमें ओसवाल समाज का ध्वंस निहित है।

यदि सरकारी सेन्सस (जनसंख्या) की ओर दृष्टिपात करें तो जैनियों की संख्या जैसी दिनोंदिन घट रही है, जिस अनुपात से उक्त जन संख्या ह्रास होती जा रही है उससे उसके अस्तित्व का लोप अवश्यंभावी प्रतीत होता है। बहुत से विद्वानों का मत है कि जैन समाज मे आरोग्यता का अभाव, बाल-विवाह, व्यायाम का अभाव, और विश्वास-प्रियता आदि कारणों से ही समाज की जन संख्या घटती जा रही है। ऐसे अग्निकुण्ड से समाज की रक्षा होने का उपाय कठिन नहीं है। यदि समाज से बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि कुप्रथाएं हटा दी जांय, अविश्वासिता को तिलांजलि देवें, शुद्ध वायु, जल और खाद्यवस्तुओं की व्यवस्था करें, एवं नियमित व्यायाम करें तो दिनोंदिन समाज मे सबल संतति की संख्यामे अवश्य वृद्धि होगी।

यदि अपने समाज का अग्निकुन्ड अविद्या समझी जाय, अशिक्षा के कारण समाज प्रतिदिन हीनवल होती दिखाई पड़े तो इस अग्निकुन्ड से बचनेका उपाय कष्टसाध्य नही है। अविद्या हटाने के लिये स्थान २ में प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यापारिक शिक्षा आदि शिक्षाओका उचित प्रबन्ध होने से अपनी समाज के लोग क्रमशः सुशिक्षा प्राप्त करके ऐसे अग्निकुन्ड से मुक्त हो सकते हैं।

यदि सामाजिक अन्तर्विप्लव अर्थात् समाज में दलबन्दियां, अन्याय उत्पीड़न आदि अत्याचारो को अग्निकुण्ड की उपमा दी जाय और ये सब समाज के घातक समझे जायं तो ऐसी दशा मे भी सुधार हो सकता है। परन्तु मेरे विचार से केवल ओसवाल समाज का ही नहीं समग्र जैन समाज का धार्मिक प्रश्न जिस प्रकार जटिल होता जा रहा है और वर्त्तमान धार्मिक स्थिति जैसी छिन्न भिन्न होती जाती है उससे यह धार्मिक अवनति ही समाज का ज्वलन्त अग्निकुण्ड सा प्रतीत होता है। चाहे श्वेताम्बर समाज देखिये या दिगम्बर समाज, कहीं गच्छादि के झगड़े, कहीं पंडित पार्टी और बाबू पार्टी इन सब के बीच घोर कलह का समाचार किसी से अविदित नहीं है।

यदि आप श्वेताम्बर समाज पर दृष्टिपात करें तो आपको प्रथम ही समाज में संवेगी, स्थानकवासी और तेरहपंथियों का प्रधान भेद देखाई पड़ेगा। समाज में एक सज्जन संवेगी धर्म भेद पर विश्वास रक्खें तो किसी को हानि नहीं पहुंचती परन्तु यदि वह सज्जन दूसरे स्थानकवासी अथवा तेरहपंथी सज्जनों पर द्वेषभाव से अनुचित आक्षेप करें तो समाज की उन्नति कहां? जिस जगह कषाय के वश मनुष्य अपनी शक्ति का व्यय करते हैं तो वह केवल समाज का ही क्षय करते हैं। धार्मिक विषयों के दोष गुण का विचार करना समाज का कार्य नहीं है, तथापि समाज स्थित एक मतवाले दूसरे मतानुगामी के विरुद्ध नाना प्रकार के आक्षेप और दोषारोप करते हैं ऐसे दृष्टान्त बहुत से विद्यमान हैं।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि धार्मिक विषय की अवतारणा करना एक दुःसाहस मात्र है। परन्तु जब मैं देखता हूं कि इसी ओसवाल समाज में तपगच्छ और खरतर गच्छ के विषय में स्थान स्थान में सभायें बैठीं, प्रस्ताव पास हुये, हैण्डबिल पुस्तकें छपीं, बाईस टोले वाले और तेरहपंथी परस्पर में अयथा कटूक्ति व्यवहार करने लगे, कहीं सुनने में आता है कि एक अम्नायवाले दूसरे अम्नायवालों के साथ धार्मिक चर्चा की ओट में निन्दा चर्चा कर रहे हैं, कहीं संवेगी तेरहपंथी को और कहीं तेरहपंथी संवेगी को घृणित दृष्टि से देख रहे हैं और अपने अपने सम्प्रदायवाले धर्मराज अर्थात् साधु-आचार्य वगैरह ऐसे [illegible] कार्यों में मदद पहुंचा रहे हैं तो समाज का सच्चा अग्निकुण्ड इसी को मानना पड़ता है। इसी धार्मिक अग्निकुण्ड में गिरकर हमारे समाज की इष्टशक्ति अमूल्य समय और अगणित अर्थ नष्ट हो रहा है। जहां तक मेरा अनुभव है समाज की धार्मिक अनैक्यता रूपी यह [illegible] अग्निकुण्ड [illegible] भयङ्कर रहा है। आज यदि जैनियों में श्वेताम्बर दिगम्बर आदि भिन्न न होते तो जैन समाज का यह कदापि न रहता और साथ साथ ओसवाल समाज भी इस [illegible] दिखाई पड़ती।

सज्जनों! अपने जैनी भाई अधिकतया व्यापार में ही लगे रहते हैं। धार्मिक विषय को सोचने का अवसर भी कम रहता है इसीलिये केवल एक श्रद्धा अथवा विश्वास पर ही कुल क्रमागत अपने अपने श्रावक धर्म को ठीक मान लेते हैं। ऐसे धार्मिक विषयों पर धर्माचार्यों में मतभेद होकर वही बला समाज के शिर पर आ जाती है तो वही अग्निकुण्ड हो जाता है।

पाठक यह न समझें कि ओसवाल समाज में जितने भिन्न भिन्न धार्मिक मत देखने में आते हैं वे सब एक हो जांय, कारण ऐसा होना असंभव सा है। परन्तु धार्मिक भेदो को केवल विश्वास की वस्तु समझ कर अपने सम्प्रदाय मे सन्तुष्ट रहें, दूसरे सम्प्रदायवालों से क्लेश न बढ़ावें और इन मतभेदो से प्रचंड अग्निकुंड न बनावे तो समाज की रक्षा संभव है। ऐसा होने से क्रमशः एकता भी बढ़ती जायगी, जैन समाज अखन्ड रहेगा और साथ साथ ओसवाल समाज भी उच्च कोटि की दिखाई देगी।

मैंने समाज के अग्निकुन्ड के विषय मे अपना विचार प्रगट किया है। यदि प्राचीन काल से अद्यावधि पर्यन्त भारत का इतिहास देखा जाय तो यहां के प्रायः सभी समाज वालो मे किसी न किसी समय उनके धार्मिक विषयो ने अग्निकुन्ड रूप मे परिणत होकर उन्हे अगणित हानि पहूंचाई थी। समय समय पर भारतीय समाज को यही धार्मिक वादानुवाद किस प्रकार छिन्न भिन्न करता रहा इसके दृष्टान्त वर्त्तमान काल तक यथेष्ट मिलेगे। आज भी हिन्दू समाज मे मत-मतान्तर के लिये परस्पर मे किस प्रकार फूट देखने मे आती है इसके वर्णन की आवश्यकता नही। समाज के कितने उत्कृष्ट जीवन इसी प्रश्न को हल करने मे नष्ट हो गये। बहुत सी आर्थिक हानि के साथ परस्पर में क्लेश बढ़ते हुए इसी अग्निकुन्ड मे अच्छे अच्छे समाज भी नष्टप्राय हो रहे हैं। एक भारतवर्ष ही क्यों, अन्यान्य देशों के इतिहास मे भी यही सत्य स्पष्ट मिलता है। यूरोप मे जिस समय रोमन केथोलिक (Roman Catholic) धर्म पर, उनकी पोपलीला पर,

नवीन प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) धर्मका आक्रमण हुआ था, उस समय हजारों जीवन नष्ट हुए थे। मुसलमानों में शिया, सुन्नी के भेद से भी उस समाज को बहुत कुछ हानि पहुंची थी। आज इसी मतभेद से अमीर अमानुल्लाह को देश त्यागी होना पड़ा है। विधवा विवाह आदि सामाजिक विषयों पर धार्मिक प्रभाव बहुत पड़ा हुआ है। एक पक्षवालों के धार्मिक विचार जबतक संपूर्ण रूप से दूसरों के विचार के साथी न बनेंगे तब तक समाज में ऐसी विवाह प्रथा कदापि चलने की आशा नहीं है। इसी प्रकार वर्णाश्रम पर धार्मिक छाप लगा कर अछूतोंके ऊपर के कार्य की सफलता बहुत कुछ अन्धकार में फेंक दी गई है। धार्मिक विषय और आध्यात्मिक चर्चा को गौण रख कर पाश्चात्य लोग जड़ विज्ञान में अब बहुत अग्रसर हो गये हैं। इस समय उनके समाज में यह धार्मिक अग्निकुन्ड बहुत दबा पड़ा है। इसी कारण उनके समाज में यह धार्मिक मतभेद प्रज्वलित अग्निकुन्ड की तरह उनको ध्वंस करने में असमर्थ है। अपने समाज में भी धार्मिक विषय को पृथक करके शिक्षा विषय पर, स्वास्थ्य के नियम पर, कुरीतियों को हटाने पर और अन्यान्य आवश्यकीय सुधार पर जिस समय अपने ओसवाल नवयुवक कमर कसेंगे उसी समय ऐसे अग्निकुन्ड से रक्षा पाने की आशा हो सकती है अन्यथा समाज का पतन अवश्यभावी है।

मैंने किसी मत पर व्यक्तिगत आक्षेप के भाव से नहीं लिखा है। समाज का धार्मिक अनैक्य विचार हृदय में विशेष खटकता है। इसी कारण जो कुछ मैं सोच रहा हूं वही पाठकों के सम्मुख यथावत उपस्थित किया है। अतः समस्त ओसवाल भाइयों से निवेदन है कि मेरे प्रस्ताव पर अवश्य ध्यान दें और समाज हित के लिये उचित व्यवस्था सोच कर प्रचार करें। अलमति विस्तरेण।

'ओसवाल नवयुवक' वर्ष २, संख्या ८ ; [illegible] १९२८ पृ० [illegible]

श्रीओसवाल उत्पत्ति-पत्र

अपने प्राचीन आचार्य्य और विद्वान् लोग यद्यपि बहुत से ऐतिहासिक रचनादि और नाना प्रकार के साहित्य का पूरा फण्ड रख गये हैं, परन्तु वे अपने उपदेश द्वारा अन्य मतियो को जैनी बनाने का कोई विशेष इतिहास नहीं छोड़ गये हैं। कुलभाट और चारणों के पास जो विवरण मिलते है वे अधिकतया कल्पित और अयुक्ति पूर्ण होते हैं। इस हेतु ऐतिहासिक दृष्टि से उनका स्थान उच्च नहीं है। श्री वीर परमात्मा के निर्वाण के पश्चात् भी बहुत से राजा महाराजादि उच्च कोटि के मनुष्यों की जैन धर्मपर अपूर्व श्रद्धा का उल्लेख मिलता है और इन लोगों के समय समय पर अपने पैतृक धर्म को त्याग जैन धर्म अङ्गीकार करने के दृष्टान्त जैन ग्रन्थोंमे बहुधा दृष्टिगोचर होते हैं। राजपूत क्षत्रियों से जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करके एक समय में ही कई राजपूत वंश के लोगोंने अहिंसा धर्म मानकर एक नवीन समाज की स्थापना की थी परन्तु खेद है कि इस घटना का कोई भी प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। पश्चात् इसी प्रकार वैदिक धर्म माननेवाले बहुत से उच्च वर्णके लोग जैनाचार्य्यो द्वारा प्रतिबोधित होते हुये समय २ पर जैन धर्म स्वीकार करके समाज में मिलते गये। हर्षका विषय है कि उक्त समाज का गौरव अद्यावधि जैन समाज में प्रधान रूपसे माना जाता है।

ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में कई पुस्तकें और लेख आदि प्रकाशित हुये हैं जिनका सारांश यह ज्ञात होता है कि—श्री पार्श्वनाथ भगवान के छट्ठे पाट में श्री रत्नप्रभ सूरिजी हुये थे। उन्होंने

वि० सं० २२२ में ओसीया (उपकेश) नगर के राजा उपलदेव जो कि पँवार राजपूत जाति के थे उनको सह कुटुम्ब और समस्त नगरवासी राजपूतों के साथ जैन बनाने पर वे ही ओसवाल संज्ञा से ख्यात हुये। इस घटना के पश्चात् भी इसी प्रकार राजपूत आदि कौम जैनाचार्यों के उपदेश से जैन धर्म में दीक्षित होती गई और उन लोगोंको उस समय अवस्था से समाज में स्थान मिलता गया। वीर निर्वाण के ७० वर्ष में ओसवाल समाज की सृष्टि की किंवदन्ति असम्भव सी प्रतीत होती है। श्री पार्श्वनाथ भगवान् के छट्ठे पाट के श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा ओस वंश की स्थापना की कथा भी विश्वसनीय नहीं है। ऐसी दशा में ओसवाल समाज की उत्पत्ति का इतिहास अपूर्ण सा ही है और इस विषय में खोज की आवश्यकता है। मेरे संग्रह मे ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में एक प्राचीन कवित्त का अपूर्ण पत्र है जो यहां प्रकाशित किया जाता है। यदि किसी पाठक के पास इस कवित्त का पूरा पाठ हो तो आशा है कि वे महाशय उसे प्रकट करेंगे। सम्भव है कि उक्त अंशका शेष भाग मिलने से ओसवाल समाज के इतिहास में और भी प्रकाश पड़ेगा।

(दोहा)

श्री सुरसती देज्यो मुदा, आखर बहुत विशाल।
नाम सव संकट परो, उत्पत्ति कहुं उसवाल॥ १॥
देस फिरै किण नगर मे, जात हुई के गत।
सुगुरु धरम निरधारियो, कहिस्यु अब सब बात॥ २॥

(छन्द)

त्रिय सुन्दर ओपम फूल कली, कनआ मयसु' उतरी बिजली।
मुगताम्बर जेम चलै पधरं, वहुरूप भलो मनुकाम हरं ॥ ४ ॥
सुर सुन्दर जेठ सहोदर छै, लघु ऊपल राव जोधार अछै।
सुर सुन्दर लोक मे भीम गया पधरा,
भिन माल को राज वडो जुकरा ॥ ५ ॥
पुन दोय सहोदर मित्र भला, सम रूप मयंक सुधार कला।
नलराजमनमथ रूप जिसा, महिराण अथग्ग सोभाय इसा ॥ ६ ॥
किरणाल तपै पुन भाग भलं, अरिदूर भजे इक आप वलं।
नगराज उदार दोपंति खरा, किल छात पँवार सुगट खरा ॥ ७ ॥

(दोहा)

द्रंग मांहि मंत्री तणा बेटा दोय सरूप।
वहो दुरग माहि रहै रुपिया कोड अनूप ॥ १ ॥
सहर मांहि छोटो वसै लाख घाट छै कोड।
वडै भ्रात नै इस कहै करु कोडरी जोड ॥ २ ॥
एक लाख देवे खरा दुरग वसू' हूं आय।
वलती भोजाई कहै वचन सुनो चित लाय ॥ ३ ॥
देवरजी सुणज्यो तुम्हे किसो कोट छै सून।
या विण आयां ही मरै, राखो ये अब मून ॥ ४ ॥
वड़ऊ धरण वखाणीयै छोटो ऊहड जांण।
उठीयो वचन सुणी करी, लघु बंधव हरिरांण ॥ ५ ॥
कोप अंग तिण वेल ब्रण कह्यो वसाउ द्रंग।
एम कही आयो सहर बहुलो पोरस अंग ॥ ६ ॥
उपलनै वासै जइ वदै पाछली वात।
भोजाई मोसो दियो सुघालो मुज तात ॥ ७ ॥

'ओसवाल नवयुवक' वर्ष २ संख्या ६ (पौष १९८९) पृ० २९९-३००

हमारे महान पूर्वज

स्वर्गीय डाक्टर टेसीटोरीके नामसे कुछ पाठक अवश्य परिचित होंगे। आप यूरोप अन्तर्गत इटली देशके निवासी थे। आपने राजस्थानी हिन्दीका विशेष अभ्यास किया था और राजपूतानेमें ऐतिहासिक खोजके लिये बहुत दिन बिताये थे। जोधपुर और बीकानेर दोनों स्थानोंमें उनसे मेरी भेंट हुई थी। आप उस समय राजाओंके ख्यात, चारणोंके कवित्त, छन्द, गीत, कथाओंके संग्रहमें तत्पर थे। एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के जरनल में उनकी कई रिपोर्टें छपी थीं, जिनमें उनकी इस ओरकी कार्यवाही प्रकाशित हुई है। उक्त प्रसिद्ध संस्थासे बिब्लियोथेका-इन्डिका नाम की जो ग्रंथमाला निकलती है, उसमें आपने राजस्थानी सीरीज़ नामसे कई ग्रंथ प्रकाशित किये थे। परन्तु थोड़े ही समय के बाद उनको कार्यवश स्वदेश लौटना पड़ा और वहीं ही उनका देहांत हो गया। इटली जानेके पहले, आपने राजपूताने में जो हस्तलिखित ग्रंथ, गुटके आदि संग्रहित किये थे, वे आप उक्त एसियाटिक सोसाइटी में रख गये थे। मैं समय समय पर उन ग्रंथों का निरीक्षण करता रहा। उनमें राजस्थान के इतिहास सम्बन्धी सामग्रीके साथ-साथ अपने ओसवालों के प्रसिद्ध पुरुषों की गुण कीर्ति में रचे हुए गीत, कवित्त, छन्द आदिका भी संग्रह किया। इन सबके प्रकाशित होनेसे अपने पूर्व पुरुषों की कीर्ति और कार्य कलाप पर विशेष प्रकाश पड़ेगा। इसी विचारसे उक्त डाक्टर टेसीटोरी साहब के संग्रह में से कुछ साधन आज मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। आशा है जाति हितैषी अन्य सज्जन भी ऐसी

सामग्री, जो उनके पास हो, उसे प्रकाशित कर अपने समाज के एक गौरव पूर्ण इतिहास-संकलन में सहायक बनेंगे।

यहां "ओसवालां मैं दातार हुआ तिणांरा नाम" प्रकाशित किया जाता है। इसमें दातारों की संख्या ७७ है। परन्तु इन नामो मे ओसवालों के नाम के साथ-साथ श्रीमाल पोरवाल आदि के पुरुष रत्नों के भी नाम हैं। यह तालिका कोई समय अथवा स्थान की अपेक्षा से (ध्यान मे रखकर) नहीं लिखी गई है और न इस मे संग्रह कर्त्ताका ही कोई उल्लेख है। मुझे जिस गुटके में यह तालिका मिली थी उसमें और भी कई गीत, कवित्त आदि संग्रहित थे, और प्रारम्भ में 'सेवग मंछाराम रा कह्या" ऐसा लिखा हुआ था। यह तालिका भो उन्हीं सेवगजी का संग्रह होना संभव है। इसके वहुत से नाम प्रसिद्ध हैं परन्तु, कुछ नामो के खोज की आवश्यकता है। यह तो स्पष्ट है कि इन महापुरुषों ने अपनो बुद्धि, वल और दान शीलता से किसी समय विपुल यश प्राप्त किया होगा; परन्तु खेद है कि आज अपने उनकी कीर्तियों से अपरिचित हे। समाज के ऐसे पुरुष-रत्नों के लुप्त गौरव का प्रकाश करना समाज का एक कर्त्तव्य है।

तालिका को भाषा डिंगल है। अभ्यास न होनेसे इसमें मेरा ज्ञान तुच्छ हैं; इस कारण इसके शब्दो में जो कुछ त्रुटियां हो वे सुज्ञ पाठक सुधार लेनेकी कृपा करें।

ओसवालां मैं दातार हुआ तिणांरा नाम।

१ जगडू सोलावत, पाप रांका २ सारङ्ग, वास सौरठ ३ करमचन्द मुहतौ वछावत, सांगैरो ४ भामौका वडियौ, वास चीतोड ५ खरोगुल्ल हांडयौनगभवतः वास आकोलै ६ जगडूललवांणी, जोधपुर ७ हीरजी संघ वाले चौ, जोधपुर ८ लोढ़ा भैरूदास ९ नैरामो, अलवल गढ़, (मेवाडमें), इन आगरे हुवा १० श्रीमाल हीरा नन्द ११ लोढ़ा फचरो नेतुनपाल (?) तेजसी वरहडियो अकवर पानसाह मांनियौ १२ मुंहतो रायमल वैद सोभत १३ जालोर, लोढ़ौ हमीर १४ श्रीनमाल, लोढ़ो १५,

शेत्रुंजे सिंघ कियौ ७१ * आसकरन अमीपाल, चोपड़ा ७२ पेतसी, भोजावत, पांप श्रीमाल ७३ साह हरषौ नाणजीरौ ७४ नाणजी पूरखमे- हुवौ हाथी दान किया ७५ पोरवाल चांपसीदास, वास पट्टनैं ७६ श्रीमाल तोतराज ७७ श्रीमाल जसराज, वास खंभायच।

उपरोक्त तालिका टेसीटरी साहबकी संग्रहीत गुटका नं० १७ मे है और कलकत्तेके एसियाटिक सोसाइटीके पुस्तकालयकी हस्तलिखित पुस्तकों में सुरक्षित है। इसी प्रकार अपने समाजके प्रख्यात व्यक्तियोंके विषय में मुझे बहुत सी कविता छन्द आदि मिले हैं, वे भी क्रमशः प्रकाशित करनेकी इच्छा है। सोजत, नागोर आदि स्थानो के भाइयो से साग्रह निवेदन है कि इस तालिका के पुरुषो के विषय में खोज करें और जो कुछ सामग्री मिले उसे प्रकाशित करें।

['ओसवाल नवयुवक' वर्ष ६ संख्या १ (वैशाख १९९०) पृ० ४३-४४]

---

* ये बीकानेर के रहने वाले थे, नाहटोंकी गवाड़की ऋषभदेव स्वामीके मंदिरकी प्रतिष्टा इन्होंने करवाई थी, इसके लिये देखो "आत्मानंद" (१९३२-३३) में प्रकाशित बीकानेर के जैन मन्दिर।

अशुद्ध कुंकुम (केसर)

जैनभाइयो ! "हैरल्ड" के गत फेब्रुअरि संख्या मे विलायती भ्रष्ट खांड सम्बन्धी लेख लिख कर अजमेर निवासी श्रीयुत् शोभागमलजी हरकावटने परमोपकार किया है, परन्तु विदेशसे आई हुई और २ वस्तुओमे भी नाना प्रकार के अशुद्ध अपवित्र द्रव्य का भेल समेल रहता है कि जिसके श्रवणमात्र से अपने सहधर्मी भाइयो का तो कहना ही क्या ? किन्तु समग्र हिन्दूमात्र को उन वस्तुओं के व्यवहार से अरुचि और घृणा हो जावेगी। सर्व पाप का मूल लोभ है। इस लोभ के वश से मनुष्य नाना प्रकार के अकृत्य करनेसे भी भयभीत नहीं होता है। व्यवसाय मे लाभ के अर्थ लोग यहा पर भी घृतादिक मूल्यवान द्रव्य मे प्रायः दूसरी अल्प मूल्य की वस्तु भेल करते हैं, सो सब को विदित है, परन्तु विदेशियो मे हिंसादिक का लेशमात्र भी विचार नहीं है, वहां पर यहां से भी अधिक अशुद्ध पदार्थों का मिश्रण होना क्या आश्चर्य है ? यहां किसी प्रकार का द्वेषभाव का आशय नहीं समझना, कारण उन्ही लोगो के प्रमाणिक ग्रन्थो में अपने व्यवहारिक द्रव्यो मे महाभ्रष्ट अखाद्य पदार्थों के मिश्रण का विवरण पाठ करके उसको प्रगट करना उचित समझ कर यह लेख लिखने मे आया। देखिये ! कुंकुम (केसर) अपने जिसको एक उत्कृष्ट द्रव्य समझ कर सर्वदा व्यवहार मे लाते हैं, उसमे कैसी २ घृणित अस्पृश्य पदार्थो का भेल रहता है। नीचे मूल और अनुवादसे सम्पूर्ण विदित हो जावेगा यहां पुनरुल्लेख से लेखनी को दूषित नहीं करूंगा। इस केसर में विदेशियों ने ऐसी वस्तु मिलाये हैं कि जिसका व्यवहार अपने श्रावको को सर्वथा निषेध है और जिस को श्रवण कर हिन्दुस्तान मात्र का

शरीर रोमाञ्च होता है। ऐसी २ वस्तु अकसर प्रायः करके मेल किया जाता है, और अपने ऐसी वस्तुको उत्तम समझ कर भक्षण करते हैं, और ललाट में लगाते है और परमात्मा के पूजन में रखते हैं। पञ्चमकाल के प्रारम्भ मे ही यह हाल है आगे न जाने क्या होगा। कैसी कष्ट की बात है जो द्रव्य का स्पर्श भी पाप है, उस द्रव्य को अपने लोग निःशंक से व्यवहार मे लाते हैं और भगवान के मस्तक पर चढ़ाते हैं। इस विषय पर ज्यादा लिखना आवश्यक नहीं है—निम्नलिखित प्रमाणों से जब प्रत्यक्ष सिद्ध होता है तब आशा है कि हमारे सर्व जैनभाइयो इस विदेशीय अपवित्र द्रव्य को किसी प्रकार के व्यवहार मे नही लावेंगे, और सर्व जाति से अपने मे इस केसर का व्यवहार अधिक है इस कारण अपने को ज्यादा सावधान होना चाहिये। यद्यपि काश्मीर देशमें भी केसर पैदा होती है। वह हिन्दू राज्य है इससे उमेद है वहा की केसर मे इस तरह भ्रष्ट पदार्थों का मिश्रण संभव नहीं है। ऐसी शुद्ध केसर ही श्री जिनपूजामें व्यवहार योग्य है, अन्यथा उसके अभाव मे केवल चन्दन कपूरादि पवित्र पदार्थों का ही व्यवहार उचित है, न केवल रंगत और सुगंधि के लोभ से ऐसी अशुद्ध द्रव्य का व्यवहार सर्वथा निन्दनीय और महान पाप रूप है। जैसे हमारे प्रामाणिक [illegible] जी ने अपने मुनीम द्वारा सहारनपुरवालों के नागपुर के कारखाने की जाँच का हाल लिखा है वैसे ही हमारे पाठकों मे अगर कोई साहब ज्यादा खालिस काश्मीरी केसर मिल सकती है उसका हाल सर्व साधारण को प्रकट करेंगे तो बड़ा लाभ होगा। इत्यलं विस्तरेण।

being by mixing with it shredded beef, of which a suitable piece is boiled and then shredded into small fibres, which are stained with saffron water and then dried."

आपिनाईन पहाड़ के अब्रुजि जिले के केसर के खेती के विवरण मे लिखते हैं कि, इसमे भेलसमेल नाना प्रकारसे किया जाता है, बाहुल्यता से प्रचलित रीति यह है कि गोमास के लच्छे मिलाये जाते हैं। प्रथम गोमांस के टुकड़े को पानी मे औंटाया जाता हैं पश्चात् (केसर की तरह) मिही लच्छे काट कर केसर के पानी मे रंग किया जाता है, फिर सुखाकर मिलाया जाता है।

Extract from Encyclopœdia Brittanica, ninth edition Vol. 21 page 146

"At present saffron is chiefly cultivated in Spain, France, Sicily, in the lower spurs of the Apennines & in Persia & Kashmir··· ······· ···The stigmas and a part of the style are carefully picked out and the wet saffron is then scattered on sheets of paper to a depth of 2 or 3 inches; over this a cloth is laid and next a board with a heavy weight. A strong heat is applied for about two hours so as to make the saffron "sweat" & a gentler temperature for a further period of twenty-four hours, the cake being turned every hour so that every part is thoroughly dried· ······· The drug has naturally always been liable to great adulteration in spite of penalties · · Grease and butter are still very frequently mixed with

the cake and shreds of beef dipped in saffron water are also used............ If oily, it is probably adulterated with butter grease.

आजकल केसर स्पेन, फ्रान्स, सिसिली द्वीप, आपिनाईन पहाड़ की नीची तराई ईरान और काश्मीर में पैदा होती है, इसके पुष्पकी केसर और पराग को हुसियारी से तोड़ा जाता है। फिर उसी गीली केसर को कागज के पत्रोंपर २।३ इञ्च पूरा करके बिछाया जाता है, और उसपर एक कपड़ा ढांक कर ऊपर से एक पटिया भारी बोझ देकर दबाया जाता है। अन्दाज दो घण्टे तक इसमें खूब आंच दी जाती है कि जिसमें केसर से पसीना छूट जाय, फिर २४ घण्टे तक मन्दी आंच रहती है और उसी केसर के पिण्ड को घण्टे २ में उलटाया जाता है कि जिसमें हर तरफ अच्छी तरह शुष्क हो जावे। अपराधियों की दण्ड की व्यवस्था होनेपर भी बहुमूल्य के सबब से इस केसर में तस्कर बहुत मिलावट करते हैं। अबतक चर्बी और मक्खन अक्सर उस केसर के पिण्ड में मिलाया जाता है और केसरको पानी में डुबो कर गोमांसका टुकड़ा भी मेल किया जाता है। अगर केसर में चिकनापन मालूम होवे तो मक्खन या चर्बीसे मिलावट का संभव जानना।

श्री राजगृह प्रशस्ति

जैन तीर्थ गाइड के तवारिख सुबे बिहार मे उसके ग्रंथ कर्ता लिखते हैं कि मथियान महल्ला के मंदिर मे एक शिला लेख जो अलग रखा हुआ है· · · · · ·संवत् तिथि वगैरह की जगह टूटी हुई पंक्ति (१८) हर्फ उमदा मगर घीस जानेकी वजह से कम पढ़ने मे आता है। आखिर की पंक्ति मे जहां गच्छ का नाम है वहां किसी ने तोड़ दिया है, वज्र शाखा वगैरह नाम बेशक मौजूद है। यह पढ़कर मुझे देखने की बहुत अभिलाषा हुई। पता लगाने पर १७ पंक्ति का एक लेख दिवार पर लगा हुआ पाया। किसी २ जगह टूट गया है, संवत् वगैरह साफ है और दूसरा टुकड़ा मालूम हुआ। पहिले टुकड़े के लिये बहुत परिश्रम करने पर पता लगा और अब वहां के रईस बाबू धन्नू लालजी सुचन्ती के यहां रखा गया है।

यह राजगिरि के श्री पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का प्रशस्ति लेख है। दोनो टुकडे बिहार मे जोकि राजगिरि से उत्तर १२ मील पर है किसी कारण से यहां होगे और बहुत वर्षो से यहां पर है। मुझे बहुत खोज करने पर भी यहां उठाकर लाने का विशेष कारण का पता न लगा, इतना ही ज्ञात हुवा है कि वहां के मथियान श्रावक लोग लाये थे।

इस प्रशस्ति के दोनों पाषाण श्याम रंग प्रायः समान माप के हैं, दोनों १० इंच चौड़े और पहला टुकड़ा २ फूट १० इंच और दूसरा २ फूट ८ इंच लंबा है। अक्षर अनुमान आध इंच के हैं। पहले टुकड़ा

जिनेश्वर सूरी से खरतर विरुद का स्पष्ट लेख है जिससे बहुत से पक्ष-पातियों का भ्रम दूर होगा। आचार्यों के नाम क्रमवार हैं, यह पूर्व देशको अपूर्व वस्तु है। आजतक अप्रकाशित थी। इसका पांडित्य और पद लालित्य पाठकों को पढ़ने से ही ज्ञात होगा।

नोटः—'श्री पार्श्वनाथ मन्दिर प्रशस्ति' लेखक द्वारा संग्रहित और प्रकाशित 'जैन-लेख-संग्रह' प्रथम खण्ड लेख नं० २३६ (पृ० ५८-६२) मे देखें।

[इस प्रसस्तिके दोनों पत्थर राजगृहमें लेखकके मकान 'शांतिभवन' मे सुरक्षित है।]

'श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरन्स हेरेल्ड' पु० १२ अंक १० (नवम्बर १६१६) पृ० ३७६-३७७,

एक दृश्य

आज लगभग दो युगकी बात है कि मैं मेरे बड़े भाई राय मणिलालजी, उनके पुत्र और मेरी स्वर्गीया माताजी के साथ प्रथम ही मारवाड़ की राजधानी जोधपुर गया था। कुछ थोड़े ही समय व्यतीत हुए थे कि वहां के प्रसिद्ध योद्धा, बृटिश गवर्नमेण्टमें विशेष प्रभावशाली महाराजा सर करनल प्रतापसिंहजी चीन युद्धसे बड़े नामवरी के साथ लौटे थे। इस समय वहां घर घर यही चर्चा और इस घटना की बड़ी खुशियाली जारी थी। मेरे भाई साहब उनसे मिलने गये और आकर मुझसे कहने लगे कि "सरकार (वहां के लोग जोधपुरके महाराजा साहब को "दरबार" और सर प्रतापसिंहजी को "सरकार" कहते थे) बड़े बुद्धिमान, सादे सीधे सज्जन पुरुष हैं। उन्होंने मुझको फिर मिलने कहा है, तुम भी इस बार साथ चलना, मिलकर तुमको भी बड़ी खुशी होगी।" इस बार मैं भी साथ गया। जिस बंगलेमें सरकार रहते थे वहां पहुंचे। वह भादोंका महीना था और पूर्वाहका समय था। हम लोग भोजन करके ही रवाने हुए थे। पाठक गण परिचित होंगे कि राजपूताने में विशेष कर वर्षा ऋतुमें मक्खियोंका उपद्रव बहुत रहता है। बंगलेमें खबर मिली कि सरकार अभी तक लौटे नहीं हैं परन्तु शीघ्रही पहुंचेंगें। हम लोगोंको एक कमरेमें ठहराया गया। द्वारपर युद्ध से प्राप्त हुई कई चीनी तोपें रखी हुई थी। कमरे के दीवारों पर सैकड़ों फोटो टंगे हुए थे। कहीं इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध लार्ड लेडियोंकी, कहीं जापान के बड़े बड़े लोगों की छोटे बड़े सब तरह के चित्र नजर आये। थोड़े ही देरमे सरकार कई नौजवान राजपूतो के साथ घोड़े पर पहुंचे। उनके भोजनका समय हो गया था। तुरंत ही घोड़ेसे उतर कर बंगलेके

कमरे मे चले गये गये। हम लोग भी वहां बुलाये गये। अहल-कारने आकर कहा—बंगाले के सेठोंको सरकार अपने खास कमरे में बुलाते हैं। हमलोग उठ कर उसके साथ साथ चले। वहां पहुंच कर देखा कि कमरा एक साधारण सा है—कोई सजावट नहीं है केवल जाजमकी फर्स बिछा हुआ है, और बगलमे एक मामूली पलंग (ढोलिया) रखा हुआ है। सरकार उसी पलंग के बगलमें जो खाकी पोशाकसे घोड़ेसे उतरे थे वही पहिने हुए अर्द्धासनसे बैठे हुए हैं और उनके साथवाले ३।४ और राजपूत भी घोड़ोंसे उतर कर उसी तरहकी वर्दी पहिने बैठे हैं। सर प्रतापसिंहजी ने देखते ही हम लोगो का अभिवादन लेकर उनके नजदीक बैठनेको कहा। आज्ञानुसार हम लोग भी पासमे बढ़कर बैठे। इतनेही मे थाल पहुंचा। अपूर्व दृश्य नजर आया। चांदी कांसेके बदले चीनीके प्लेट यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मणोंके बदले श्मश्रूधारी यवनोको देखा। सरकारने खानसामोसे अपने हाथमे प्लेट ले लिया और साथके लोग भी लेते गये। परि-वेशन चलने लगा। पावरोटी भी है, बिस्कुट भी है, भुजिया भी है, कलाकन्द भी है याने पाश्चात्य और देशी दोनों भोजन सामग्री परोसी गई। खाना आरम्भ हुआ। साथ साथ सरकारने हम लोगोंके तरफ निगाह डालकर कहा—"सेठ आरोगो"- भाई साहबने उत्तर दिया—महाराज अभी भोजन करके ही आ रहे हैं। सरकारने कहा—"जिमि-येनें जीमानो सोरो" और भोजनके लिये विशेष आग्रह करने लगे। मुझसे रहा न गया, विनयसे कहा—"महाराज! हम लोगोंके भोजन मे कुछ विचार है।" बस इतना सुनते ही सरकारने आंख उठाकर मेरी तरफ गर्दन घुमाकर कहा—"विचार क्या ? म्हे तो मारयांको विचार करां, और कायको विचार?" मैं कुछ उत्तर देनेको था कि भाई साहबने मौन रहने का संकेत किया। अस्तु, सरकार और उनके साथियोंने अच्छी तरह भोजन किया और वहां बैठे ही हस्त मुख प्रक्षा-लन कर लिया। बादमें हम लोगोंसे बंगाल प्रांतकी बहुतसी बातें पूछीं। उठनेके समय सरकारने कहा—"आप लोग तो हमारे मेहमान

हैं, जो कुछ सवारी वगैरहको जरूरत होवे सब राजसे इन्तजाम हो जावेगा, किसी तरहकी यहां पर तकलीफ न होनी चाहिये" इत्यादि। इस प्रकार स्वनाम-धन्य सर प्रतापसिंहजीसे हम लोगोंका साक्षात दृश्य समाप्त हुआ।

महाराजा सर प्रतापसिंहजी के चीन युद्धमें पधारने के समय उनका तथा वहां के प्रजाओंका मनोगत भाव किस प्रकार था वह उस समयके संवाद पत्रोंमें जो विवरण प्रकाशित होते थे उससे अच्छी तरह ज्ञान होता था। प्रिय पाठकोंको रोचक होगा इसी धारणासे यहां पर उसका थोड़ा नमूना उपस्थित करता हूं।

जिस समय सरकार चीन जङ्गकी उमङ्गमें जोधपुरसे रवाने होने लगे उस समय उनको ऐसी खुशी हो रही थी कि मानो उनकी उमर भरकी आशा पूर्ण होने लगी। उन्होंने जानेके पहिले दरबारसे भी अर्ज किया था कि "मैं चीनमें जाकर खावन्दोंके नमकको उजालूंगा। जीता वचा तो फिर आकर इन चरण कमलोंके दर्शन करूंगा और यदि मारा गया तो मैं हजूरको वड़े हजूरके पाटकी आन दिलाता हूं कि इसका वैसा ही उतसव करें कि जैसा प्रिटोरियाके फतह होनेकी खबर आनेपर किया गया था। शोक और सन्ताप किसी प्रकारका न फरमावे, नहो तो मेरी आत्मा दुःखी होगी।"

एक दिन किसी पुरुषने सर प्रतापसिंहजीको कहा कि आपने युरोपमें पधार कर पृथ्वीकी पश्चिम सीमा तक मारवाड़का नाम प्रसिद्ध कर दिया है और अब चीन जाकर पूर्वके अन्त तक मारवाड़का नाम कर देंगे। आपने फरमाया कि प्रतापसिंह नहीं जाता है उसको उसकी जाति (राजपूत) और प्रसिद्धि ही लिये जाती है। न जाऊं तो तुम्हीं लोग कहोगे कि प्रतापसिंह उमर भर तो कहता रहा कि घरमें पड़कर मरनेसे लड़कर मरना अच्छा, और जब समय आया तो जी चुराकर वैठ रहा" और अपने भतीजे महाराज फतहसिंहजीकी ओर देख कर कहा "यह वह युद्ध नहीं है कि मैंने तुमको मार डाला

और तुमारे वेटने मुझे मारडाला घरमे ही घाटा पड़ा। यह शाहन-शाही जङ्ग है, एक तरफ एक शाहनशाह है दूसरी तरफ सात शाहनशाह हैं और दुनियां भरकी आखैं उस तरफ लगी हुई है ऐसी जङ्ग वार वार काहेको होती है, इससे वढ़कर और कौनसा अवसर आवेगा।"

जोधपुरके प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्वर्गीय मु० देवीप्रसादजी के पुत्र पीताम्बर प्रसादजी उस समय एक कवित्त रचा था। कविता यह थी :—

केते भूपाल जात शैलको बगीचन वाग,
केते वनमांहि दीन मृगनको मारे हैं।
केते रङ्गमहलमे सहेलिनते आनन्द करत,
केते निशिघोप अति महामतवारे हैं।
केते भूमिपाल जात पोलो घुड़दौड़मे,
केते भूमिपाल रागरङ्गको निहारे हैं॥
धन्य २ आज महाराज सर प्रतापसिंह,
चीन जङ्ग मांझसो उमंगते पधारे हैं॥ १॥

———

'देशवन्धु' भाग १ अङ्क १८ (२५ अगस्त १६२४) पृ० ११—१२

चौरासी

चौरासी एक ऐसी संख्या है, जिसका व्यवहार मैं बहुत स्थानो मे देखता आया हूं। यह संख्या किस प्रकार और कहांसे प्रचलित हुई, इसका इतिहास नहीं मिला, अतः मुझे यह जानने की इच्छा रही। भारतवर्ष के प्रायः समस्त आर्य-सन्तान लोकाकाश-स्थित जीव-योनियो की संख्या अपने-अपने शास्त्रानुसार चौरासी लक्ष मानते हैं। खोज करनेपर जहाँ तक मुझे उपलब्ध हुआ है, उससे यह जाना जाता है कि चतुर्दश राजलोक के जीव-भेद की संख्या चौरासी लक्ष के चौरासी अङ्क को ही महत्व का समझकर बहुतसी जगह इसका व्यवहार प्रचलित होना सम्भव ज्ञात होता है। कई स्थानो में विषय की संख्या चौरासी से अधिक है, तो भी वहां चौरासी से ही वह विषय अद्यावधि प्रसिद्ध है। इसी प्रकार किसी-किसी जगह विषय-भेद चौरासी संख्या से अल्प भी है, तो भी यह शब्द विषय के साथ लगा दिया गया है और इधर-उधर से उनके भेद वही चौरासी प्रकार के बना दिये गये हैं।

'हिन्दी-विश्वकोप' के द्वितीय भाग के पृष्ठ ७३७ मे 'आसन' शब्द के अर्थ मे लिखा हुआ है कि 'घेरण्डसहिता' के मतसे जीव जन्तुओ की संख्या जितनी होती है, आसन की गणना भी उतनी निकलती है। शिवजी के आसनों की संख्या वही चौरासी लक्ष कही गई है। उनमें चौरासी प्रकार के प्रधान आसन बताये हैं। 'शिवसंहिता' के मत से भी चौरासी प्रकार के आसन हैं। कामशास्त्र के अनुसार चौरासी प्रकार के आसनों की संख्या भी प्रसिद्ध है। पूना से 'चौरासी आसन'

नामक जो मराठी भाषाकी सचित्र पुस्तक प्रकाशित हुई हैं, उसमे ६३ आसनों के नाम और चित्र पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यद्यपि आसनों की संख्या चौरासी से अधिक पाई जाती है, तो भी प्राचीन कालसे आसन-भेदके साथ यही संख्या लगा दी गई हैं।

यह चौरासी का अङ्क चौदह की संख्या को छः गुणा करने से भी होता है। शिक्षा-कल्प व्याकरणादि चौदह प्रकार की विद्या, खड्ग-रत्न, स्त्री-रत्नादि चक्रवर्तियों के चौदह रत्न तथा देवताओं-द्वारा समुद्र-मथन से प्राप्त लक्ष्मी कौस्तुभादि चौदह रत्न, ऐसे ऐसे चौदह भेदवाले छः विषयो की समष्टि भी चौरासी का अङ्क हो जाता है।

जौहरी लोग जिन-जिन रत्नोको संग कहते हैं, उनकी संख्या भी वे चौरासी बताते हैं, परन्तु यह संख्या कल्पित मालूम होती है। पाठकों को यहां एक और बातकी ओर ध्यान दिलाता हूं कि जौहरी लोग चौरासी के फैरमें पड़ जानेके भयसे इस चौरासी संख्या से इतने सशंकित रहते हैं कि अपने व्यापारादि मे इस संख्या का व्यवहार कदापि नहीं करते। अर्थात् यदि चौरासी रुपये के भावमे उन लोगो से कोई सौदा मांगा जाय, तो स्वीकार नहीं करते; बल्कि पौने चौरासी में बेचने को सहर्ष तैयार हो जाते हैं। इसी प्रकार वे न तो वजनमे कदापि ८४ रत्ती माल बेचते हैं, और न किसी पुड़िये में ८४ नगीने रखते हैं।

चौरासी की संख्याके विषय में 'हिन्दी-विश्वकोष' सप्तम भाग पृष्ठ ५८७ मे जो वर्णन है, उससे पाठको को ज्ञात होगा कि भारतवर्ष के कई देशोमें ऐसे नाम के परगने और तालुके मिलते है, जिनकी सृष्टि चौरासी ग्रामोको लेकर ही हुई होगी। नृत्य के समय पैरमे बहुतसे घुँघरू बांधे जाते हैं, संख्याधिक्य के कारण उनको भी चौरासी कहते हैं।

ब्राह्मण वर्णमे नाना कारणो से सैकड़ो भेद विद्यमान हैं। पाठकों मे से बहुत से सज्जन 'चौरासी ब्राह्मण' ब्राह्मणो की एक जाति-विशेष

है, ऐसा जानते होंगे। कासगंज से सम्वत् १६७३ की प्रकाशित 'ब्राह्मण निर्णय' नामक पुस्तक की पृष्ठ २६५ में लिखा है—"चौरासिया—यह गौर ब्राह्मणान्तर्गत एक ब्राह्मण-समुदाय है, इनकी वस्ती जयपुर या जोधपुर राज्यमे है, किसी समय चौरासी ग्रामोंकी वृत्ति इनके यहां थी, अतः ये चौरासिये ब्राह्मण कहाये अथवा किसी ऐतिहासिक विद्वान् की सम्मति यह भी है कि ये भट्ट मेवाड़–सम्प्रदाय में हैं और विशेष-रूपसे मारवाड़ के चौरासी ग्रामों मे बहुत हैं।"

ब्राह्मणों की तरह जैनियों में भी श्रावकों की जाति की संख्या चौरासी कही जाती है। इन श्रावकों की जातियों के नाम भी वही चौरासी अङ्क के महत्व के लिये एकत्रित किये गये होंगे। देश, जाति और गोत्रादि की अपेक्षासे श्रावकों की जाति-संख्या चौरासी से भी अधिक मिलती है, और वर्णादि दृष्टिसे उनके भेद चौरासी संख्यासे बहुत कम भी है। चौरासी संख्याका महत्व ही इसका एकमात्र कारण मालूम होता है। इसी प्रकार जैनियोंके आचार्यों में जो गच्छ-भेद हैं, उनकी संख्या भी प्रसिद्धि में चौरासी बतलाई जाती है, परन्तु वास्तव में चौरासी से भी अधिक मिलते हैं। कई स्थानोंमे जैन-तीर्थों की संख्या भी चौरासी देखने में आई है।

जैन लोग जो चौरासी लक्ष जीव-योनि की संख्या बताते हैं उसकी गणना इस प्रकार है—पृथ्वीकाय ७ लक्ष, अपकाय ७ लक्ष, तेजकाय ७ लक्ष, वायुकाय ७ लक्ष, प्रत्येक वनस्पतिकाय १० लक्ष, साधारण वनस्पतिकाय १४ लक्ष, दो इन्द्रियवाले २ लक्ष, तीन इन्द्रिय वाले २ लक्ष, चार इन्द्रियवाले २ लक्ष, देवयोनि ४ लक्ष, नरकयोनि ४ लक्ष, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय ४ लक्ष और मनुष्ययोनि १४ लक्ष—सब मिला कर ८४ लक्ष।

जैनियों में इस चौरासी अङ्क का व्यवहार और भी बहुत से स्थानों मे मिलता है। जैसे कि इनके प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान की आयु चौरासी लक्ष पूर्व वर्ष की थी इत्यादि। इनके अतिरिक्त

चौरासी चौहट्टे कहे जाते हैं। यह संख्या भी कल्पित-सी है, कारण चौहट्टो की संख्या में कम-वेशी हो सकती है।

दिगम्बर जैन लोग मथुरा के पास वृन्दावन के रास्तेमें एक स्थान को भी 'चौरासी' कहते हैं, और वहां अन्तिम केवली श्री जम्बुस्वामी का निर्वाण मानते हैं। परन्तु वे लोग स्थानका नाम चौरासी होनेका कुछ कारण नहीं बताते हैं।

इसी प्रकार इस चौरासी अङ्क का व्यवहार प्राचीन कालसे नाना स्थानमें नाना प्रकारसे देखने में आता है परन्तु इसका कोई गूढ तत्त्व अथवा और कोई विशेष रहस्य मेरी दृष्टि मे नहीं आया। आशा है कि पुरातत्त्व-प्रेमी सज्जन इस विषय को ध्यान मे रखकर भविष्य में इस पर और भी प्रकाश डालेंगे।

चौरासी आसन

१ अध्वासन
२ अर्ध कुर्मासन
३ अर्ध पद्मासन
४ अर्ध पादासन
५ अपानासन
६ अर्ध वृक्षासन
७ अघ शवासन
८ आनन्द मदिरासन
९ उपधानासन
१० उत्कटासन
११ उत्तान कूर्मासन
१२ उत्थित विवेकासन
१३ उर्द्ध पद्मासन
१४ उर्द्ध धनुपासन
१५ उर्द्धसंयुक्तपादासन
१६ उष्ट्रासन
१७ एकपाद वृक्षासन
१८ अंगुष्ठासन
१९ कार्मुकासन
२० कुक्कुटासन
२१ कूर्मासन (गोमुखासन)
२२ कोकिलासन
२३ कंदपीडनासन
२४ खंजनासन
२५ गर्भासन
२६ गरूडासन
२७ गोरक्षासनभद्रासन
२८ ग्रन्थिभेदनासन
२९ चक्रासन
३० ज्येष्ठिकासन
३१ ताडासन
३२ त्रिस्तम्भासन
३३ दक्षिण चतुर्थांस पादासन
३४ दक्षिण पादपवन मुक्तासन
३५ दक्षिणपादशिरासन
३६ दक्षिण पाद-त्रिकोणासन
३७ दक्षिण नर्कासन
३८ दक्षिणासन

३९ द्विपाद पार्श्वासन
४० द्विपाद शिरासन
४१ दृढ़ासन
४२ धनुषासन
४३ धीरासन तथा दक्षिण पाद धारासन
४४ निःश्वासासन
४५ पवन मुक्तासन
४६ पवनासन
४७ पर्वतासन
४८ पूणपाद त्रिकोण
४९ पूण पादासन
५० पूर्व नर्कासन
५१ प्रार्थनासन
५२ प्राणासन
५३ प्राढ़ासन (वामार्द्ध पद्मासन)
५४ बद्धपद्मासन
५५ वातायनासन
५६ वाम अर्द्ध पादासन
५७ वाम अगुण्ठासन
५८ वाम जान्वासन
५९ वाम त्रिकोणासन
६० वामदक्षिण पादासन
६१ वाम दक्षिण [illegible] गमनासन
६२ वामपाद अपान गमनासन
६३ वाम पाद पवन मुक्तासन
६४ वाम वक्रासन
६५ वाम भुजासन
६६ वाम शाखासन
६७ वाम सिद्धासन
६८ वाम हस्त चतु-कोणासन
६९ वामहस्त भयङ्करासन
७० वामहस्त भुजासन
७१ वीरासन
७२ वृक्षासन
७३ भुजंगासन
७४ मत्स्यासन
७५ मत्स्येन्द्रासन
७६ मयूरासन
७७ मुक्तहस्त वृक्षासन
७८ मंडुकासन
७९ योन्यासन
८० लोलासन
८१ शवासन
८२ शलभासन
८३ सर्वाङ्गासन
८४ समानासन
८५ सिद्धासन
८६ सिंहासन(व्याघ्र०)
८७ स्थितविवेकासन
८८ स्थिरासन
८९ स्वस्तिकासन
९० हस्त भुजासन
९१ हस्त वृक्षासन
९२ हंसासन
९३ क्षेमासन

चौरासी संग

१ असलिया
२ अहला
३ आलेमार्ना
४ आवरी
५ इमनी
६ इसब (संगेसम)
७ उपल
८ करेला(जामुनियां)
९ कसोटी
१० कांसला
११ कुदरत संग
१२ खारा

१३ गवा
१४ गुन्दड़ी
१५ गोमेद
१६ गोरी सङ्ग
१७ गौदन्ता
१८ चिती
१६ जजेमानी
२० जड़सङ्ग
२१ जवरजद्द
२२ जहरमूरा
२३ डुंरी
२४ ढेड़ी सङ्ग
२५ तामड़ा
२६ तुरमुली'
२७ तुरषावा
२८ तेलिआ
२६ दारचना
३० दाहन फिरङ्ग
३१ दांतला,
३२ दूरेनजफ
३३ घोनेला
३४ नरम
३५ नीला
३६ पनघन
३७ पाथरी
३८ पन्ना
३६ पायजहर
४० पारस
४१ पितोनिया
४२ पीटकबुफावा
४३ पुखराज
४४ फिरोजा
४५ वांशी संग
४६ विलोर
४७ वेरुज
४८ मकड़ी संग
४६ मकनातिस
५० मरगज
५१ मरवर संग
५२ मरियम
५३ माणिक
५४ मुपा संग
५५ मूंगा
५६ मोती
५७ रत्तक या रतवा
५८ राट संग
५६ लशुनियां'
६० लाजवरद
६१ लास संग
६२ लालड़ी
६३ लीली
६४ लुधिया
६५ शाङ्खया
६६ शिरखडी या संग जराहत
६७ सफरी
६८ सितारा संग
६६ सिया संग
७० सिदूरिया
७१ सीङ्गली
७२ सोमाक सङ्ग
७३ सीवार सङ्ग
७४ सुरमा संग
७५ सानेला
७६ सोलेमानी
७७ सोहानमखी वा सोनामाक्षि
७८ हकिक
७६ हकिक कुल्वाहार
८० हजरलयह या हाउवेर
८१ हदिद
८२ हालन'
८३ हाबाम
८४ हीरा

चौरासी ज्ञाति †

१ अग्रवाल
२ अच्छितवाल
३ अष्टवगी
४ आठसषा
५ आणंदोरा
६ ओसवाल
७ कघूटि
८ कपोल
६ करही
१० काकलिया
११ काट
१२ काथौरा
१३ कोरंटवा
१४ कंवी
१५ खंखेरवा
१६ खंडेलवाल
१७ गुजरवा
१८ गोलावा
१६ चउसषा
२० चित्राडा
२१ चीतौडा
२२ चंडायना
२३ जागडा
२४ जालहरा
२५ जायसवाल
२६ जांवूस
२७ जिदाडा
२८ जीडीस
२६ जेहराणा
३० डीडूवाल
३१ तिलउरा
३२ तिंसउ
३३ दीसावाल
३४ दोसषी
३५ दोहिल
३६ धाडक
३७ नरसिंघउरी
३८ नाउरा
३६ नागद्रहा
४० नागर
४१ नानावाल
४२ नीमा
४३ पद्मावती पुरवाल
४४ पल्लीवाल
४५ पंचम
४६ पुस्करवाल
४७ पोरवाल
४८ बग्घू
४६ बघेरवाल
५० बयस
५१ बंगट
५२ बंधणो
५३ बंभ
५४ ब्राह्माणी

---

† इन चौरासो जाति श्रावकोके नाम प्राचीन पत्रसे दिये गये है। वीकानेरसे प्रकाशित 'महाजनवंश मुक्तावली' के पृ० १६४ मे ८४ वणिक जातिके नाम छपे हैं। उस तालिकामे इन नामोंसे कुछ फेरफार है। ऐसी तालिका 'जैनसम्प्रदाय शिक्षा' नामक पुस्तकके पृ० ६८६ मे भी प्रकाशित हुई है और इसमे गुजरात और दक्षिण-प्रान्तके चौरासी यातोंकी तालिकाये भी हैं।

५५ वाच
५६ वायडा
५७ वालमी
५८ भटेरा
५९ भडिया
६० भाभू
६१ भूंगडा
६२ भोगिउडा
६३ मडाहडा
६४ महुवर
६५ माघयर
६६ मेडतवाल
६७ मेवाड़ा
६८ मोढ
६९ राजौरा
७० रुस्तकी
७१ लाड
७२ श्रीखंडेरी
७३ श्रीगुरु
७४ श्रीमाल
७५ साचौरा
७६ सुहडया
७७ सूराणा
७८ सोधति
७९ सोनीवाल
८० सोरतिया
८१ सोहरिया
८२ हरासारा
८३ हालर
८४ हूवड

चौरासी चौहट्टे *

१ अकीक हट्ट
२ अफीण
३ अमल
४ इंधण
५ कडव
६ कपास
७ कसेरा
८ कंदोई
९ कागल
१० काछी
११ कापड
१२ कीलिका
१३ कुंभकार
१४ कूडिया
१५ गलियार
१६ गंधर्व्व
१७ गंधी
१८ गांछा
१९ गुलनी
२० चांचीनो
२१ चोवटी
२२ चितेरा
२३ चोपावटी
२४ छीपा
२५ जवाहर
२६ जीर्णशाला
२७ जोडा
२८ तलावटि
२९ तूनारा
३० त्रापडिया
३१ दांत
३२ दूध
३३ दोरावली

---

* हाटोंके ये नाम भी प्राचीन पत्रसे लिखे गये हैं। चौहट्टों अर्थात् मंडियोंके नामोंकी तालिका किसी जगह प्रकाशित मेरे देखनेमें नहीं आई है।

३४ दोसी	५१ बाजित्र	६८ शस्त्र
३५ नाण	५२ विंधण	६९ पामर
३६ नापित	५३ वेश्या	७० पीजर
३७ नालिकेर	५४ वंद्यक	७१ पेडागर
३८ निस्ती	५५ भडभुंजा	७२ सकह
३९ नीराग	५६ भरतार	७३ सतूआरा
४० पटुआ	५७ भागूड़ा	७४ सरहिआ
४१ पट्टकूल	५८ भॅसा	७५ सराणिया
४२ परीपद	५९ मणीयार	७६ साकर
४३ पस्ताक	६० मंजी	७७ सांथरिया
४४ पाननी	६१ मांडविया	७८ सिलात्र
४५ प्रवाल	६२ मोची	७९ सुई
४६ फड	६३ रंगरेज	८० सुनार
४७ फूल	६४ लपेरं	८१ सुवर्ण
४८ फोफलीय	६५ लुहार	८२ सुंषडी
४९ वकर	६६ लूण	८३ सूत्र
५० वलियार	६७ लोहनी	८४ सूत्रहार

चारासी गच्छ

१ उच्छितवाल	९ काछेलिया	१७ गच्छपाल
२ ओटविया	१० किहरसा	१८ गंगेसरा
३ ओसवाल	११ कुतुबपुरा	१९ घग्रोधारा
४ कनकपुरा	१२ कुचोरा	२० घोपवाल
५ कनोजिया	१३ कोडीपुरा	२१ चित्रावाल
६ कमल कलसा	१४ कोरंटवाल	२२ चोतौडा
७ कंदोचिया	१५ खरतर	२३ जात्रन्डा
८ कबोजिया	१६ खंभायना	२४ जालोरा

२५ जांगड़ा
२६ जीराउला
२७ झेरंटिया
२८ तपागच्छ
२९ त्रांगड़िया
३० थंभणा
३१ दकूहरा
३२ दासहिया
३३ देकवाड़िया
३४ दोवंदणीक
३५ धर्मघोष
३६ धंधूपा
३७ नगरको
३८ नागद्रहा
३९ नागरवाल
४० नागोरीतपा
४१ नाडोला
४२ नाणावाल
४३ पल्लीवाल
४४ पाल्हणपुरा
४५ पांचवहलि
४६ पूर्णतिल
४७ वत्रेरवाल
४८ वडगच्छ
४९ वडोदिया
५० वहेडिया
५१ वांपणा
५२ विआणा
५३ विज्ञाहरा
५४ विरेजीवाल
५५ वेगडा
५६ वेलिया
५७ वोकडिया
५८ वोरसिहा
५९ ब्रह्माणिया
६० भटनेरा
६१ भरुअछा
६२ भावराजिया
६३ भिन्नमाल
६४ भीमसेनिया
६५ मघोडिया
६६ मलधारा
६७ मंडालिया
६८ मंडाहडा
६९ मंथाणा
७० मंधोरा
७१ मुरंडवाल
७२ मुहसोरडिया
७३ रामसेनिया
७४ रुद्रोलिया
७५ रेवती
७६ संजनीया
७७ सावौरा
७८ साडेरा
७९ सिद्धांतिया
८० सुराणा
८१ सेवंतरिया
८२ सोरठिया
८३ सोपारा
८४ हंसारको

'विशाल-भारत' वर्ष ३ खण्ड २ अङ्क ३ (सितम्बर १९३०) पृ० २८२-२८४

लोकमान्य का संस्मरण

आज मैं जिस पत्र के लिये दो अक्षर लिख रहा हूं वह 'लोकमान्य' है, यह नाम जब कहीं सुनने में अथवा देखने में आता है उस समय भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष की स्मृति ताजी हो जाती है। उस पुरुषरत्न लोकमान्य के प्रति जनता ने एक समय किस तरह की अगाध भक्ति और श्रद्धा दिखलाई थी, तथा हार्दिक प्रेमका परिचय दिया था, उसका दृश्य मेरे नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हो जाता है। वह मेरे हृदयपटपर ऐसा अङ्कित है कि आजीवन भूला नहीं जा सकता। बम्बई की वह मर्म्मस्पर्शी घटना जो मैंने उस समय देखी थी, वैसी शायद ही कहीं देखने में आयगी।

पुरातत्व विषय शोधका प्रेमी होनेके कारण पूनेके प्रसिद्ध भांडारकर पुरातत्व भवनको एक बार देखनेकी मेरी इच्छा बहुत समयसे थी। एक बार काठियावाड़की यात्राका इरादाकर मैं बम्बई पहुंचा। उस समय ऐतिहासिक विद्वान् मुनि जिनविजयजी और मेरे मित्र स्वर्गीय आर० डी० बनर्जी साहेब पूनेमे थे। बम्बई पहुंच कर मैंने पूने जानेका निश्चय किया और यथा समय पूनेके दर्शनीय स्थान देखकर और मुनि महाराज के आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त करनेके बाद बम्बई लौट आया। यहां कुछ समय रहकर शीघ्र ही रवाने होनेका विचार कर रहा था। इसीलिये शामको समान वगैरह खरीदनेके लिये बाजारमे गया था। मैं एक दूकान मे था, वहीं लोकमान्यजी की पीड़ा वृद्धि और संकटापन्न दशाकी खबर मिली। खबरका पहुंचना था कि बाजारकी सभी दुकाने बन्द होने लगी। सर्वत्र सन्नाटा छा गया, मानो लोगोंके अपने अपने घरमे ही कोई महान् विपद उपस्थित हुई

हो। डेरेमें लौटनेपर ज्ञात हुआ कि तिलक महाराजकी व्याधि असाध्य हो गई है। कार्य समाप्त कर लौटने के एक दिन पूर्व टिकट लेकर स्थान रिजर्व करानेको ज्यों ही स्टेशन की तरफ अग्रसर हुआ कि एक बड़ा ही अवर्णनीय दृश्य देखा। स्टेशन पर पहुंचते ही सारा प्लेटफार्म, जो हर समय जनाकीर्ण रहता था, प्रायः जनशून्य था। दफ्तरोमें जहां सैकड़ों कर्मचारी अपने अपने कार्यमे तत्पर दिखाई देते थे वहां दो एकके सिवा कोई नजर न आता था। पूछनेपर मालूम हुआ कि आज लोकमान्य बालगंगाधर तिलक इस असार संसारसे कूच कर गये। रेलवे कर्मचारियोंको इस दिन अन्य कार्योंकी व्यवस्था करनी कठिन हो गई थी। सवेरेसे बारम्बार केवल पूनेकी ओरसे स्पेशल ट्रेनें आ रही थीं। तिलक महाराजके कुटुम्बियोके अतिरिक्त हजारों नरनारी उस पुरुषश्रेष्ठके अन्तिम दर्शन की लालसासे सजल नयन होकर चले आ रहे थे। मैं तो पहले ही वहां की भीड़ देखकर हतबुद्धि सा हो गया था फिर उक्त खबरसे और भी विषादित हो गया। भीड़ से ऊबकर डेरे लौटनेका विचार किया परन्तु स्टेशन से बाहर आनेपर जनस्रोत देखकर आगे बढ़नेकी हिम्मत न हुई।

सब लोग शोकमें सिर नीचा किये हुए, एक ही भावमें डूबे हुए धीरे-धीरे अग्रसर हो रहे थे। नीरवता छाई हुई थी। किसीके मुखसे एक शब्द तक नहीं निकलता था। लोकमान्य जीकी अर्थी पीछेसे आ रही थी। सारेशहरमें जलूसके घूमनेकी बात थी। जलूस को आदिसे अन्त तक देखनेकी इच्छासे, मैं गलियोंकी राह, कालबा-देवीके निकट जवेरी-बाजार पहुचा और एक परिचित मित्रकी दुकान पर कठिनाई से जाकर बैठा। रास्तेकी दोनों पट्टीकी दुकानों और मकानोंपर पहले ही से लोग ठसाठस भर गये थे। मनुष्योंकी भीडसे रास्तेके अस्तित्वका लोप सा प्रतीत होता था। जलूस क्या था, सारा शहर ही उमड़ पड़ा था। जिधर दृष्टि पड़ती थी नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई पड़ते थे। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, मारवाड़ी,

पंजाबी, दक्षिणी, मद्रासी सब जाति और धर्मवाले दलके दल सम्मिलित थे। कहीं ढोल करतालके साथ उस महापुरुषकी प्रशंसामें गीत गाये जा रहे थे। कहीं मृदङ्ग मंजीरेकी ध्वनिसे उनकी कीर्त्ति कहानी वर्णित हो रही थी। बड़ी भक्ति और शान्तिके साथ लोग जनाज़ेको लिये हुए चले जा रहे थे। तरह तरहके भाव दिलमें उठते थे। सबकी आंखोंमें आंसू थे और दिलोंमे आहोंके बादल। उस समय एकत्व भावकी जैसी पराकाष्ठा देखनेमे आई वैसी कभी नहीं आई। जाति-निर्व्विशेषसे सब लोग एक ही रंगमे रंगे दिखाई देते थे। यह निश्चय ही उस देशभक्त महात्माका ही प्रभाव था कि उनके स्वर्गवासके पश्चात् भी देशवासियोंके हृदयमें इस प्रकारका उच्च भाव जागृत हो रहा था। जलूसके साथ अंगरेज भी सम्मिलित थे परन्तु पुलिसका एक भी मनुष्य न दिखाई पड़ा॥

तिलक महाराज महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। उनके वशमे यह प्रथा चली आती है कि और जातियोंकी बात तो दूर रही, स्वयं उन्हींकी जातिके ब्राह्मण भी घरवालोंको छोड़कर, मृतदेह को स्पर्श नहीं कर सकते। परन्तु यहा तो मामला ही कुछ और था, हिन्दू के अतिरिक्त मुसलमान, पारसी, यहूदी आदि सभी लोग जनाजे को रथी को कन्धो पर रखने को लालायित थे। इसे वे महान पुण्य समझते थे और सभी लोग रथी उठाते हुए चल रहे थे। रथी मे लोकमान्य बैठी हुई अवस्था मे रखे गये थे। पुष्पोंसे, वह पवित्र रथी, ऊपर से नीचे तक लदी हुई थी। सायंकाल मे समुद्र तटपर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हुई। मैं चौपाटी के निकट एक मकान के ऊपर से यह दृश्य देख रहा था। मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुओं का जो साधारण श्मशान है वहां २।३ हजार मनुष्यों से अधिक के ठहरने की गुञ्जायश नही है, लेकिन यहा तो लाखों की संख्या थी। नेताओ को बड़ी घबराहट हुई। वे लोग कार्पोरेशन के मेयर के पास गये और समुद्र तटपर शव दाह की आज्ञा मांगी। उनके असमर्थता प्रगट करनेपर मन

लोग गवर्नर साहब के पास दौड़े। वे भी कुछ न कर सके और प्रश्न पोर्ट कमिश्नर पर छोड़ दिया। सूरतनिवासी स्वर्गीय सेठ गुलाबचन्द देवचन्द आदि नेताओं के प्रयत्न करने पर पोर्ट कमिश्नर साहबने, इस शर्तपर कि भविष्य में अग्नि-संस्कार के स्थान पर कोई स्मृति-चिह्न न बने, वहां शव-दाह की आज्ञा दे दी। चिताग्नि धधक धधक कर जलने लगी। स्त्री, पुरुष, छोटे, बड़े लाखों के नेत्रों के सन्मुख उस पुरुषरत्न का भौतिक शरीर भस्मीभूत होकर सदा के लिये अनन्ताकाश में विलीन हो गया। इस प्रकार यह पवित्र स्मृति मेरे अन्तस्थल मे सर्वदा के लिये अचल हो गई है। हाय! वैसे पुरुष क्या दुनिया को फिर कभी नसीव होंगे? काल किसी को नहीं छोडता! विधि का विधान ही विचित्र है!!

'लोकमान्य'—दिवाली-विशेषांक, २१ अक्तूबर १९३०

कलकत्ते में कला प्रदर्शनी

कलाचार्य ठाकुर महोदय तथा साहित्य और कला प्रेमी मित्रों और सज्जनों !

यह मेरे लिये बड़े ही सौभाग्य तथा गर्व की बात है कि आज आपका इस स्थानपर स्वागत करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है । आप सब सज्जनोंका कला स्थापत्य यत्नतत्व आदि विषयोंके पारंगत विद्वान हैं इस भवनमें एकत्रित देख कर मेरे हृदयमें आनन्द की जो बाढ़ आ रही है उसे शब्दोंमें आप के सन्मुख रख सकूं यह शक्ति मेरे मे नहीं है। आचार्य महोदय तथा सज्जनो ! जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्रीने मुझे उसके खोले जानेवाली प्रदर्शनीका भार देनेका प्रस्ताव किया था उस समय मैं, अपने कंधोंपर उठा सकनेका बल नहीं पा रहा था किन्तु इच्छा सदा यही रही कि यदि मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा विद्वान-जनताकी सेवा कर सकता तो यह मेरा परम सौभाग्य होता। अनिच्छासे अस्वीकार करनेपर भी शास्त्रीजी महोदय तथा मित्रोंके आग्रहने मुझे लाचार कर दिया कि अपनेमें पूरी शक्ति न देखते हुए भी उनका आज्ञा शिरोधार्य करूं। वृद्धावस्थामे ज्ञानकी तृष्णा तो बढ़ती जाती है किन्तु शरीर पूरी सहायता नहीं देता कि उसको बुझानेका समुचित उद्योग हो सके। इसीलिये मैं अपने उन मित्रोंका तथा प्रदर्शनी समितिके सदस्योंका सदा ऋणी रहूंगा जिन्होंने अपने अनुभव तथा दैहिक बलसे मेरी मनोकामनाको पूर्ण करनेमे कोई कोर कसर बाकी न रखी ।

सज्जनों ! मेरा हर्ष सीमासे बाहर हो जाता है जब कि मैं आपको इस 'कुमारसिंह हाल' में एकत्र देखता हूं। इसे हमारे स्वर्गीय पिताजीने हमारे परम प्रिय कनिष्ठ भ्राताके स्मारकमें स्थापित किया था। इस भवनके ऊपर श्री आदिदेव भगवानकी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करवाकर उन्होंने इस मन्दिरका महत्व और भी बढ़ा दिया। स्वर्गीया पूज्या माताजीके स्मारकमें इस तुच्छ सेवकने एक पुस्तकालय-प्राचीन मूर्त्तियों तथा चित्रोंका एक संग्रहालय स्थापित किया है। इस संग्रहके विषयमें मैं कुछ कहना नहीं चाहता। आप जैसे देश विदेशों के गुणियों, पारखियों तथा कलावन्तोंने अपनी अमूल्य सम्मतियाँ प्रदान कर मेरा उत्साह बढ़ाया है। भारतके प्राण महात्मा गांधी, पं० जवाहर लाल नेहरु आदि इस स्थानको पवित्र कर चुके हैं। इस हालको आप भी पवित्र कर रहे हैं इससे मेरा उत्साह कई गुना बढ़ गया।

सज्जनों ! हम सब लोगोंके लिये आज एक सुअवसर उपस्थित हुआ। यह शुभ सम्वाद हम सब लोगोंको विशेषकर आह्लाद कर है कि अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके बीसवें अधिवेशनके मनोनीत सभापति हिन्दीके महाकवि और अपूर्व विद्वान श्री जगन्नाथ दासजी रत्नाकर हमारे बीचमें पधारे है। सबसे अधिक हर्षका विषय तो हमारे लिये यह है कि इस 'कुमार सिंह हाल' में आपका स्वागत करने का यह पहला सुअवसर इस सुयोगने हमें दे दिया।

उपस्थित कला-मर्मज्ञ सज्जनों ! भारतीय चित्र तथा स्थापत्य कला, प्राचीन सिक्के, हस्तलिखित ग्रंथ आदिमें इधर भारत भरमें राष्ट्रीय जागृतिके कारण हमलोग अधिक ध्यान देने लगे हैं यह देशके सौभाग्य का विषय है। मुझे वह समय स्मरण है :जब कुछ इने गिने विद्वान ही इस क्षेत्रमें काम करने उतरे थे। उस समय आपका प्रस्तुत सेवक इस कार्यमें अपनी शक्तिभर लगा हुआ था। उसका थोड़ा बहुत फल आप इस प्रदर्शनीमें भी देखेंगे। सज्जनों,

भारतीय कलाको पुनर्जीवित करने का सारा श्रेय तो उस महापुरुषको है जिसने कृपा करके अपने स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता न कर अपना बहुमूल्य समय देकर प्रदर्शनी खोलनेके लिये सहर्ष हमारा निमंत्रण स्वीकार किया। डा० अवनीन्द्र नाथ ठाकुर तथा श्रीयुत ई० बी० हेवेल साहब का ही यह उद्योग है कि आज भारत तथा संसार भरमे हमारी चित्र कलाने गौरवास्पद स्थान प्राप्त किया है। सबसे पहले पेरिसकी सर्व राष्ट्रीय चित्र-कला प्रदर्शनीमें हमारे उद्घाटक महोदय का चित्र 'शाहजहाँ की मृत्यु' ही था, जिसने संसार का ध्यान भारतीय सौन्दर्य तथा रूप रंग-रेखा-ज्ञानको ओर खींचा और इस भारतीय कृतिको देख कर संसार भरमें हलचल मच गयी। आपका एक चित्र 'महाराजा अशोककी पटरानी' सम्राट् पञ्चम जार्ज तथा सम्राज्ञी अपने साथ ले गयीं। अभी तक वह चित्र राज प्रासादको सुशोभित कर रहा है। आपकी प्रतिभा २० वर्षकी अवस्थासे ही चमकने लगी थी और जब आप ३२ वर्षके हुए उस समय आपने गवर्मेन्ट स्कूल आफ आर्टमें अध्यक्षका काम भी किया। स्वर्गवासी आशुतोष मुखर्जीने आपको कलकत्ता विश्व विद्यालयमें ललित कलाकी वागेश्वरी चेयरका पहला अध्यापक नियुक्त किया। इससे आपका नहीं, किन्तु विश्व विद्यालयका गौरव बढ़ा। सरकारने भी आपकी कीर्तिके फल स्वरूप आपको सी० आई० ई० को उपाधिसे विभूषित किया।

देखिये! कला ही एक ऐसा विषय है जहां लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका समावेश देखनेमें आता है। वैदिकयुग, बौद्धयुग अथवा यवन राज्यकाल जिस समय राजा, महाराजा, धनी मानी लोग कुछ धर्म कार्य करने और स्थायी कीर्ति तथा स्मारक रख जानेकी इच्छा करते थे उस समय वे लोग अजस्र अर्थ व्यय करके अच्छे-अच्छे शिल्पी द्वारा अपने विचारोंके निदर्शन रूप कीर्तियाँ बनवाकर छोड़ जाते थे। जब जिस समय धनवान लोगोंको धर्म और ज्ञानकी ओर प्रेम हुआ उस समय वे लोग अपने अर्थका सदुपयोग करके कलावित् पुरुषोंकी योजनासे नाना प्रकारकी वस्तुएं तैयार करवा कर अक्षय कीर्ति छोड़

गये। उन्हीं कीर्तियोंका कुछ अंश आज आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित किया गया है।

मैं अब उन मित्रोंको धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपनी यह सब अमूल्य सामग्री हमें सौंपकर प्रदर्शनी को सफल बनानेमे हमारा हाथ बटाया है तथा जिन्होने शारीरिक, मानसिक, और अन्यप्रकारसे इस काममे सहायता दी है। अब मैं आप लोगोंका समय लेना नही चाहता केवल अपने सहयोगी मित्र डा० हेमचन्द्रजी जोशीसे अनुरोध करूंगा कि आप इस विषय पर अपने कुछ विचार प्रकट करें। स्वनामधन्य जगत विख्यात डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर महोदयने भी हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी तथा साहित्य-प्रदर्शनी की पूर्ण सफलताके लिये अपनी आन्तरिक शुभेच्छा का संदेशा भेजा है और वे आशा रखते हैं कि समस्त साहित्य और कला-प्रेमी सच्चेजन पारस्परिक एकताके सच्चे भावसे बंधे रहकर कार्यमे अग्रसर होते रहेंगे।

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, बीसवां अधिवेशन के अवसर पर 'साहित्य-प्रदर्शनी' के मंत्री पदसे दिया हुआ भाषण (सं० १९८८)

LIST OF WORKS & ARTICLES

Works

An Epitome of Jainism

Jain Inscriptions Part I

„ „ Part II

„ „ Part III

Prakritsuktaratna mala

Tirtha Pawapuri

प्रथमावली

सांझी संग्रह

श्री पावापुरी तीर्थ का प्राचीन इतिहास

Articles.

Prakrit Poems (Jain Swetambar Conference Herald Vol IV 1908)

Rajgir Jain Inscription (The Journal of the Bihar & Orissa Research Society Vol V September, 1919)

A Note on the Jaina Classical Sanskrit Literature (Second Oriental Conference, Calcutta, 1922)

The Genealogy of the Jagat Seths of Murshidabad (The Fifth Indian Historical Records Commission, Calcutta, 1923)

Pawapuri Temple Prasasti (The Indian Historical Quarterly Vol I No I 1925)

Jain Bibliography (Jain Gazette Vol. XXII 1926)

Inscription at Dasturhat (Murshidabad) 1754, A D (Bengal Past & Present Vol XXXV 1928)

A Note on the Swetambar and Digambar Sects, (The Indian Antiquary, September, 1929)

The Jain Tradition of the Origin of Pataliputra (Sixth All India Oriental Conference, Patna, 1930)

Some Materials relating to the Life and Time of Tirthankara Mahavira (Oswal Navayuvak Vol. V 1932)

Antiquity of the Jain Sects
(The Indian Antiquary Vol LXI, 1932)

Trilingual Inscription (1734 A D.)
(Indian Historical Quarterly Vol X, 1934)

Note on Two Jain Images from South India
(Indian Culture Vol. I, 1934)

A Note on the Kings and Emperors of Delhi
(Indian Culture Vol II No I, 1935)

জৈন দর্শনে ধ্যান [চতুর্দ্দশ বঙ্গীয় সাহিত্য সম্মিলন (দার্শনিক শাখা) ১৩৩০]

আসামের কতিপয় হিন্দু নরপতি [চতুর্দ্দশ বঙ্গীয় সাহিত্য সম্মিলন
(ইতিহাস শাখা)]

মুর্শিদাবাদের কয়েকখানি লিপি
(সাহিত্য পরিষৎ-পত্রিকা ২৪ ভাগ-৩য় সংখ্যা)

মুর্শিদাবাদের একটী প্রাচীন লিপি
(সাহিত্য পরিষৎ পত্রিকা একত্রিংশ ভাগ ১ম সংখ্যা)

জৈন মূর্ত্তিতত্ত্বের সংক্ষিপ্ত বিবরণ (বঙ্গীয় সাহিত্য সম্মিলনের
পঞ্চদশ অধিবেশনে ইতিহাস শাখায় পঠিত ১৩৩১)

প্রজাবৃন্দের প্রতি—দুটি কথা (১৯২২)

শ্বেতাম্বর ও দিগম্বর সম্প্রদায়ের প্রাচীনতা
(ঊনবিংশ বঙ্গীয় সাহিত্য সম্মিলন ১৩৩৬)

ভগবান্ পার্শ্বনাথ

জৈন ভাস্কর্য্যের নমুনা (বঙ্গলক্ষ্মী বৈশাখ—১৩৪০)

জৈন মতে জীবে দয়া—
(প্রবাসী ১৩২১—অগ্রহায়ণ ২৭ খণ্ড ২য় সংখ্যা)

राजगृह तथा नालन्दा
(ओसवाल नवयुवक, जुलाई १९३७)